9903

शोधादर्श

51

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

भ० महावीर स्वामी

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्रीमहावीर जी

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
प्रधान सम्पादक : श्री अजित प्रसाद जैन
सह – सम्पादक : श्री रमा कान्त जैन

प्रकाशक :
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ– २२६ ००४

णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श –५१

वीर निर्वाण संवत् २५३० **नवम्बर २००३ ई.**

विषय क्रम

१.	गुरुगुण—कीर्तन : पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री	श्री रमा कान्त जैन	१
२.	सामयिक क्षणिका	श्री रमा कान्त जैन	७
३.	तीर्थंकर जन्म कल्याणक का एक प्रस्तरांकन	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	८
४.	सम्पादकीयः वीर निर्वाण स्थली पावा	श्री अजित प्रसाद जैन	११
५.	मंगल श्लोक की प्राचीनता	इंजी. नीलमकांत जैन	१८
६.	ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद	डॉ. शशि कान्त	१६
७.	संस्कृत जैन वाङ्मय का आद्य ग्रन्थ 'तत्त्वार्थसूत्र'	कु. रेखा जैन	२८
८.	बेचारा सर्वज्ञ वाक्य का विश्वासी	महात्मा भगवानदीन	३५
६.	मानव का क्या अर्थ रहा	श्री शांतिलाल जैन बैनाड़ा	३७
१०.	निर्ग्रंथ मेरे गुरु	श्री उदयमुनि जी म.	३८
११.	जाग रे तू (पद्य)	डॉ. गणेशदत्त सारस्वत	४०
१२.	हमारी दुर्दशा और हीनता का कारण	डॉ. विमल प्रकाश जैन	४१
१३.	पाकिस्तान में जैन मंदिर और जैन जन	श्री रमा कान्त जैन	४४
१४.	गीत	डॉ. महेन्द्र सागर प्रचण्डिया	४७
१५.	एक चिन्तन : उत्पीड़क कल्कि राजा का बीज दग्ध करें	डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल	४८
१६.	जैन जातियां	श्री सनत कुमार जैन	५१

१७. चिन्तन कण :

जीव कर्म स्मृतियों से बंधा है — श्री धन्य कुमार जैन — ५३

शंका : उपगूहन — श्री सुखमाल चंद जैन — ५४

१८. आजकल ठंड के दिन हैं — साहू शैलेन्द्र कुमार जैन — ५६

१९. राम जन्म और तुलसीदास — जस्टिस एम.एल.जैन — ५७

२०. समाचार विमर्श : — श्री अजित प्रसाद जैन

अयोध्या की विवादित भूमि जैनियों को दिलवाने की मांग — ५८

अब पंचपरमेष्ठी नहीं षष्ठ परमेष्ठी — ६०

नवग्रह शांति जिनमंदिर निर्माण — ६१

तीर्थंकर ऋषभदेव जन्मभूमि अयोध्या तीर्थ — ६२

२१. कर्म–पंथ निर्वाण (पद्य) — डॉ. परमानन्द जड़िया — ६३

२२. साहित्य सत्कार :

तीर्थक्षेत्र कम्पिला जी ; रजत जयन्ती स्मारिका; माँ मुझे भी हक़ है जीने का ; सुदर्शनोदय महाकाव्यम् ; भाग्योदय महाकाव्यम् ; Path of Duty ; मानव धर्म; History of Jainism ; ग्वालियर गौरव गोपाचल — श्री अजित प्रसाद जैन — ६४

वीर पंचाशिका ; श्री दिगम्बर जैन बुढ़ेलवाल समाज का इतिहास ; सिन्दूर प्रकर ; Mystic India ; बुद्ध–हृदय ; प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त — श्री रमा कान्त जैन — ६७

२३. समाचार विविधा — श्री रमा कान्त जैन — ७१

२४. वीरता पुरस्कार — श्रीमती सीमा जैन — ७२

२५. अभिनन्दन — ७२

२६. शोक संवेदन — ७३

२७. आभार — ७४

२८. पाठकों के पत्र — ७५

गुरुगुण-कीर्तन

पण्डित कैलाशचन्द्र शास्त्री

सहृदयताकुलभवनं, विद्यापाथोधिमन्दरं परमम्।
कृतिपाटवसंपूर्णः नमामि कैलाशचन्द्रं तम्।

- डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य, सागर

यज्ज्ञानसिन्धोर्जलविन्दवोऽत्र
सर्वत्रलोके प्रसरन्त्यजस्रम्
सोऽत्राभिवन्द्यो नितरां बुधेशै
कैलाशचन्द्रो जयतात्सुधीन्द्रः।।

- श्री कमलकुमार जैन गोइल्ल, कोलकाता

वाणी में खिरती जिनवाणी, करती है कल्लोल
धार्मिक सामाजिक सेवायें, एकत्रित अनमोल,
भौतिक काया पर ओढ़ी चादर में रंच न झोल
उतरी ठीक धर्म कांटे पर तत्परता की तोल
युगों युगों तक शोधाश्रित हैं, मूल्यांकन के कार्य
पण्डितवर कैलाशचंद्र शास्त्री सिद्धान्ताचार्य।।

- श्री कल्याणकुमार जैन 'शशि', रामपुर

जो भी लिखा अकाट्य, आपकी चली लेखनी निर्भय
मन में सेवा भांव, भावना में बसता सर्वोदय,
तभी देशहित किया आपने, सत्साहित्य समर्पण,
पण्डित कैलाशचन्द का, वन्दन, शत अभिनन्दन।।

-श्री हजारीलाल काका, सकरार

हिमगिरि से पावन गंगा ने, अविरल स्रोत बहाया।
इसी भांति श्री कैलाशचंद्र ने, ज्ञानामृत पान कराया।।
जब तक पावन गंगा जल है, तब तक जीवन पाओ।
जब तक नभ में रवि-शशि चमके, अपना यश चमकाओ।।

- श्री बाबूलाल शास्त्री 'फणीश', ऊन

सिद्धान्ताचार्य पंडित कैलाशचन्द्र शास्त्री अभिनन्दन समिति रीवा (म.प्र.) द्वारा सन् १९८० में प्रकाशित अभिनन्दन ग्रन्थ से सम्मुख उद्धृत काव्यांशों में जिन कैलाशचंद्र का गुणगान हुआ है वह डॉ. प्रेमसागर जैन के शब्दों में "गौर वर्ण, प्रशस्त ललाट, रोम-रोम से झलकती प्रतिभा, पाण्डित्य के धनी, एक असाधारण व्यक्तित्व" थे। उनका जन्म पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जिला बिजनौर में आमों और खण्डसारी के लिये प्रसिद्ध रहे कस्बा नहटौर में अग्रवाल जैन लाला मुसद्दीलाल के घर कार्तिक शुक्ल द्वादशी को विक्रम संवत् १९६० (सन् १९०३ ई.) में हुआ था। उनकी माता पढ़ना-लिखना नहीं जानती थी, किन्तु एक धर्मपरायण समझदार महिला और **गोम्मटसार** के ज्ञाता साहूकार की पुत्री थीं। पिता साधारण पढ़े-लिखे थे और कस्बे में पंसारे की दुकान करने के कारण पंसारी के नाम से जाने जाते थे। वह हँसोड़ प्रकृति के, सरल स्वभावी और संतोषी व्यक्ति थे। ज्येष्ठ भ्राता शिखरचंद्र समाज-सेवा, भजन-गायन, पर्यूषण पर्व पर प्रभातफेरी के संचालन और लतीफेबाजी के लिये प्रसिद्ध थे। दिगम्बर जैन मंदिर उनके मकान से लगा हुआ था और मंदिर के सामने जैन पाठशाला थी।

शिक्षा का श्रीगणेश कस्बे के प्राइमरी स्कूल में हुआ। यद्यपि उस समय उर्दू का चलन था उन्हें हिन्दी लिवाई गई। धार्मिक शिक्षा उपर्युक्त जैन पाठशाला में ग्रहण की। अपनी माता के साथ वह मन्दिर में होने वाली शास्त्र सभा में जाते थे और पुराण सुना करते थे। नहटौर में एक धर्मप्रेमी-शिक्षाप्रेमी रायबहादुर द्वारकाप्रसाद जैन थे। वह कोलकाता में गैरीसन इंजीनियर थे। जब नहटौर आते वहां के बच्चों की धार्मिक व अन्य शिक्षा में गहरी रुचि लेते। बालक कैलाशचंद्र की प्रखर बुद्धि और धार्मिक अभिरुचि उनकी पैनी दृष्टि से छिपी नहीं रही। उन्होंने बालक के अभिभावकों को उसे आगे अध्ययन हेतु वाराणसी के स्याद्वाद महाविद्यालय में भर्ती कराने की सलाह दी। तदनुसार बड़े भाई शिखरचन्द्र कैलाशचंद्र को वाराणसी पहुँचाने गये। रेलयात्रा करने के आकर्षण में कैलाशचंद्र बड़े भाई के साथ सोत्साह चले तो गये और सन् १९१५ ई. की भाद्रपद कृष्ण चतुर्थी को ग्यारह वर्ष की वय में उनका स्याद्वाद महाविद्यालय में प्रवेश भी हो गया, किन्तु मातृवियोग और घर के स्वच्छन्द वातारण से दूर विद्यालय के कठोर अनुशासनयुक्त वातावरण में तीन दिन में ही उनका मन उचाट हो गया। वह घर लौटने को आतुर हो उठे। उनकी दयनीय दशा देख बड़े भाई भी उन्हें लौटा लाने का मन बना बैठे। किन्तु लौटना आसान नहीं था। दोनों भाइयों ने गुपचुप भाग

जाने की योजना बनाई। रात्रि में नज़रें बचाकर रेलवे स्टेशन पहुंच भी गये, किन्तु उनके दुर्भाग्य या सौभाग्य से रात्रि में कोई ट्रेन उनके घर की ओर जाने वाली नहीं मिली। और जब मुसाफिरखाने में ट्रेन की प्रतीक्षा में विश्राम कर रहे थे महाविद्यालय के प्रबंधक, कठोर अनुशासक पं. उमरावसिंह ने दो लठैतों के साथ उन्हें धरदबोचा, वापस विद्यालय ले आये। पन्द्रह दिन तक बालक कैलाशचंद्र का मन खिन्न रहा। इस बीच पं. उमरावसिंह पत्रिकाओं के चित्रों द्वारा उनका मनोरंजन करने का प्रयत्न करते रहे। शनैः शनैः साथी छात्रों की प्रतिस्पर्धा में पढ़ने में आनन्द आने लगा और रात में १२ बजे जगकर भी पढ़ने लगे। विद्यालय के संस्थापक बाबा भागीरथजी वर्णी ने समझाया कि इस प्रकार पढ़ने से बीमार पड़ जाओगे। स्याद्वाद महाविद्यालय में उन्होंने छह वर्ष तक अध्ययन किया। उस समय बड़ी कक्षाओं के छात्रों द्वारा छोटी कक्षाओं के छात्रों को पढ़ाने की परिपाटी थी। पं. जीवन्धर, पं. चैनसुखदास, पं. रमानाथ, पं. दयाचंद्र, पं. दरबारीलाल (सत्यभक्त), पं. कंवरलाल, पं. तुलसीराम, पं. घनश्यामदास और पं. गोविन्दराय उच्च कक्षा के छात्र थे। पं. चैनसुखदास को भी उन्हें शिक्षा देने का सुयोग रहा।

सन् १९२१ में कैलाशचंद्र कोलकाता की सरकारी 'न्यायतीर्थ' परीक्षा देने वाले थे, किन्तु महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन के कारण राष्ट्रीय भावना से प्रभावित हो उक्त परीक्षा का बहिष्कार कर वह घर चले आये। किन्तु मन न लगने पर शीघ्र ही पं. गोपालदास जी वरैया द्वारा मोरेना में स्थापित जैन सिद्धान्त विद्यालय में प्रवेश लिया। उक्त विद्यालय में उन्होंने पं. माणिकचंद्र न्यायाचार्य, पं. बंशीधर न्यायालंकार और पं. देवकीनंदन सिद्धान्तशास्त्री से **गोम्मटसार**, **तत्वार्थराजवार्तिक**, **तत्वार्थश्लोकवार्तिक**, **त्रिलोकसार** और **पंचाध्यायी** का अध्ययन किया और १९२३ ई. में शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। पं. जगन्मोहनलाल और पं. फूलचंद्र उनके सहाध्यायी रहे।

शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करते ही उनकी नियुक्ति स्याद्वाद महाविद्यालय में धर्माध्यापक के पद पर हो गई, किन्तु स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण एक वर्ष बाद ही घर लौट आये। तीन वर्ष तक कास रोग से पीड़ित रहे। जब कुछ स्वस्थ हुए उनकी माताजी उन्हें उनकी पत्नी बसन्तीदेवी के साथ अहिच्छत्र, सोनागिर और श्रीमहावीरजी के वन्दन कराने ले गई। तत्पश्चात व्यवसाय में लगे और दुकानदारी करने लगे। एक वर्ष ही हुआ था कि स्याद्वाद विद्यालय से पुनः नियुक्ति का निमंत्रण पहुँच गया।

फलस्वरूप दिसम्बर १९२७ में पुनः स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी अध्यापन हेतु जा पहुंचे और वहां सन् १९४० से ४ दिसम्बर, १९७२ को सेवानिवृत्ति तक सफल एवं यशस्वी प्रधानाचार्य की तथा तदनन्तर वहां के अधिष्ठाता की भूमिका निभाते रहे। इस बीच सन् १९३१ में उन्होंने वहां से बंगाल संस्कृत एसोसियेशन की 'न्यायतीर्थ' परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली। अपने ४५ वर्ष के सुदीर्घ अध्यापनकाल में उन्हें सहस्राधिक छात्रों को विद्यादान देने का अवसर मिला। उनके अनेक शिष्य उत्तरदायित्वपूर्ण उच्च पदों पर आसीन हुए और डॉ. जगदीशचंद्र जैन व डॉ० दरबारीलाल कोठिया प्रभृति अनेक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान समाज को उनके शिष्यों में से प्राप्त हुए। उनके ज्ञान, अध्यापन, सरल स्वभाव और सादे जीवन की गहरी छाप विद्यालय के विद्यार्थियों पर पड़ी और वह अन्त तक उनके श्रद्धास्पद बने रहे।

पं. कैलाशचंद्र जी को सर्वप्रथम शास्त्र-प्रवचन के लिये कोलकाता में रथयात्रा महोत्सव पर निमंत्रित किया गया। तदनन्तर सन् १९३४ की महावीर जयन्ती पर जैन मित्रमण्डल, धर्मपुरा, दिल्ली के निमंत्रण पर बैरिस्टर चम्पतराय की अध्यक्षता में सम्पन्न सभा में उनका प्रथम सार्वजनिक भाषण हुआ जिसकी बैरिस्टर साहब ने सराहना की। उसी वर्ष धर्मपुरा, दिल्ली की समाज ने दशलाक्षणी पर्व पर पुनः निमंत्रित कर उन्हें प्रथम मानपत्र भेंट किया। इस प्रकार शनैः शनैः वह समाज के सम्पर्क में आते चले गये और अपने प्रकाण्ड वैदुष्य, वक्तृत्व कला, मधुर व्यवहार, निर्लोभता और सरलता के कारण न केवल जैन समाज में लोकप्रिय हुए अपितु जैनेतर विद्वत्वर्ग में भी समादृत हुए। सन् १९४६ में सिवनी की जैन समाज द्वारा उन्हें 'सिद्धान्तरत्न' की उपाधि से तथा सन् १९६३ में जैन सिद्धान्त भवन, आरा के हीरक जयन्ती महोत्सव पर 'सिद्धान्ताचार्य' की उपाधि से विभूषित किया गया और जैन समाज में यत्र-तत्र होने वाले विभिन्न आयोजनों में वह सादर आमंत्रित किये जाते रहे।

उनके लेखन कार्य का श्रीगणेश, स्वयं उनके अनुसार, उनके बाल सहाध्यायी पं. राजेन्द्रकुमार के अनुरोध पर अम्बाला छावनी में लाला शिब्बामल की सुपुत्री चम्पावती की स्मृति में स्थापित ट्रैक्टमाला के लिये 'अहिंसा' शीर्षक से ट्रैक्ट लिख कर हुआ था। जब अम्बाला छावनी में स्थापित शास्त्रार्थ संघ ने अपना पाक्षिक पत्र 'जैन दर्शन' निकाला कैलाशचंद्र जी उसके सहायक सम्पादक बनाये गये। उन्होंने लिखा है तब उन्हें लेख लिखने का अभ्यास नहीं था, एक लेख लिखने में घंटों बीत जाते थे। तदनन्तर सन् १९३६ में श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ मथुरा द्वारा साप्ताहिक

'जैन-संदेश' निकाले जाने पर वह उसके सम्पादक बने और उसके लिये प्रति सप्ताह सम्पादकीय लेखों द्वारा लेखक बने।

लेखन के सम्बन्ध में प्रारम्भ से ही उनकी यह नीति रही कि जो कुछ लिखा जाय, वह व्यक्तिगत राग-द्वेष से ऊपर उठकर लिखा जाय। वह न तो प्रत्येक सुधार के विरोधी थे और न ही समर्थक। उन्होंने सुधार के विषय में मध्यमार्गी नीति अपनाई। जैन शास्त्रों के निष्पक्ष रीति से अध्ययन द्वारा उनका यह दृष्टिकोण बन गया था- **आगम के विपरीत लिखना नहीं और रूढ़ि को मान्यता देना नहीं।** इसी दृष्टिकोण को सामने रख उन्होंने अपनी लेखनी चलाई और सहस्राधिक लेख प्रसूत किये। सामाजिक विषयों और धार्मिक चर्चाओं पर जैन जातियों में परस्पर विवाह सम्बन्ध के वह पक्षधर थे और अपने बड़े पौत्र चि. रंजन का विवाह उन्होंने परवार जातीय डॉ. पूर्णचंद्र जैन, लखनऊ, जो उनके शिष्य भी रहे थे, की पुत्री सौ. प्रतिभा (प्रभा) से तथा छोटे पौत्र चि. संजीव कुमार (राजीव) का बुढ़ेलवाल जातीय श्रीमन्दरदास की पुत्री सौ. रीता से किया। पं. आशाधर के **सागारधर्मामृत** का उन पर काफी प्रभाव रहा। जातिवाद को उन्होंने प्रश्रय नहीं दिया और प्रत्येक जैन धर्मावलम्बी को अपना सजातीय माना। खान-पान में शुद्धता के वह पक्षपाती थे, किन्तु मुनियों के द्वारा आहारदान देने वाले से कराई जाने वाली शूद्रजल त्याग की प्रतिज्ञा के विरोधी थे, शूद्रजल त्याग को शास्त्र-सम्मत नहीं मानते थे। हरिजनों के सम्बन्ध में भी पं. आशाधर के मत के अनुयायी थे। उनका मानना था कि **आचार-शुद्धि और शारीरिक शुद्धि के साथ शूद्र भी धर्मसाधन का यथायोग्य अधिकारी हो सकता है।** अपने लेखों में उन्होंने मुनिमार्ग में बढ़ते शिथिलाचार का विरोध किया। अतः मुनिभक्तों की आलोचना के पात्र भी बने। उनका मानना था **मुनिमार्ग आत्मकल्याण के लिये है, उसे अपनाकर मुनिमार्ग विरोधी क्रियाएं करने से आत्मकल्याण तो सम्भव नहीं है, मुनिमार्ग पर भी दूषण आता है।** गुणग्राहक कैलाशचंद्र जी ने कानजी स्वामी के गुणों, अच्छाइयों को परखा और सोनगढ़ के विरुद्ध प्रचार करने वालों से अपनी असहमति जताई। वह इस बात से क्षुब्ध थे कि धर्म में भी राजनीति और दलबन्दी घुस आई है और धार्मिक प्रश्नों का निर्णय शास्त्र के आधार पर न करके दलबन्दी के आधार पर किया जाने लगा है।

पं. नाथूराम प्रेमी और पं. जुगलकिशोर मुख्तार की लेखनी ने कैलाशचंद्र जी में जैन साहित्य और उसके इतिहास के प्रति अभिरुचि जागृत की। प्रेमी जी की प्रेरणा

से उन्होंने पं. महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य के साथ पंडित प्रभाचंद्र विरचित **न्यायकुमुदचन्द्र** का सम्पादन किया और उसकी विस्तृत भूमिका लिखी। तदनन्तर पं. फूलचंद्र के साथ, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ से १३ खण्डों में प्रकाशित, **जयधवला टीका** का सम्पादन किया।

उनकी सर्वप्रथम मौलिक कृति **जैन धर्म** है। सन् १९४८ में उज्जैन के विद्याप्रेमी सेठ लालचंद्र सेठी ने जैन धर्म पर सर्वोत्तम पुस्तक के लिये एक हजार रुपये के पुरस्कार की घोषणा की थी। पंडित जी ने उक्त कृति का प्रणयन कर न केवल उक्त पुरस्कार पाया अपितु अपना नाम भी अमर करा लिया। **जैन न्याय, जैन साहित्य के इतिहास की पूर्वपीठिका, जैन साहित्य का इतिहास** (दो भागों में), **नमस्कार महामंत्र, भगवान ऋषभदेव, करणानुयोग प्रवेशिका, चरणानुयोग प्रवेशिका, दक्षिण भारत में जैन धर्म, प्रमाणनय निक्षेप** और **भगवान महावीर का अचेलक धर्म** उनकी अन्य मौलिक कृतियां हैं।

पूर्वोक्त **न्यायकुमुदचन्द्र** और **जयधवला टीका** के अतिरिक्त उनके द्वारा सम्पादित और अनूदित कृतियों में उल्लेखनीय हैं- **सत्प्ररूपणा सूत्र, नयचक्र, सागार धर्मामृत, अनागार धर्मामृत, गोम्मटसार जीवकांड और कर्मकांड, उपासकाध्ययन, तत्वार्थसूत्र हिन्दी टीका, समणसुत्त का हिन्दी गद्यानुवाद, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा, भगवती आराधना** (दो भाग), **कुन्दकुन्द प्राभृत-संग्रह** और **कल्याण मन्दिर**।

सन् १९४० से भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ, मथुरा के साहित्य प्रकाशन मंत्री रहे पं. कैलाशचंद्र जी की सन् १९४४ में वीर शासन महोत्सव पर भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका रही। सन् १९४७ और १९५६ में वह उसके अध्यक्ष बने और तदनन्तर संरक्षक रहे। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित साहू शांतिप्रसाद जैन ने उन्हें अपनी भारतीय ज्ञानपीठ की परामर्श समिति का सदस्य बनाया और डॉ. हीरालाल जैन के निधन पर ज्ञानपीठ की मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला का सह-सम्पादक। डॉ. ए. एन. उपाध्ये का स्वर्गवास होने पर श्री जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर के सम्पादन का भार भी उनके कन्धों पर आ गया। नवम्बर १९७४ में भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव हेतु उत्तर प्रदेश शासन द्वारा गठित श्री महावीर निर्वाण समिति तथा तदनन्तर उसके उत्तराधिकारी स्वरूप गठित तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के वह सदस्य रहे।

धर्म आम्नाय, समाज, संस्कृति, साहित्य, शिक्षा और पत्रकारिता आदि विविध क्षेत्रों में सुदीर्घ काल तक ज्योति जगाये रखने वाले पं. कैलाशचंद्र जी का देहावसान मंगलवार १७ नवम्बर, १९८७ को ८४ वर्ष की परिपक्व वय में रांची में अपने सुपुत्र सुपार्श्वकुमार के निवास पर हुआ।

सरल-सौम्य आकृति, सात्विक वृत्ति, खद्दर का कुर्ता-धोती और गांधी टोपी पहनने वाले तथा चशमा लगाने वाले इन पण्डित जी के दर्शनों का सौभाग्य मुझे भी रहा है। पिताजी डॉ. ज्योति प्रसाद जी के श्रद्धाभाजन पण्डित जी जब भी लखनऊ आते थे प्रायः हमारे निवास पर ही ठहरते थे, चौके में भोजन करते थे और पिताजी से ज्ञानचर्चा व समाज-चर्चा। पिताजी से उनका पारस्परिक परिचय, भ्रातृवत स्नेह और सद्भाव लगभग पचास वर्ष रहा। पंडित जी की प्रेरणा से पिताजी ने 'जैन संदेश' के शोधांकों का सम्पादन किया और उनके सम्पादकत्व में उसके ५१ अंक (१७ जुलाई १९५८ से १३ अक्टूबर १९८३ तक) निकले। पिताजी के साथ ही हमारा पूरा परिवार उनका स्नेहभाजन बना। हमारे अनुरोध पर उन्होंने 'डॉ. ज्योति प्रसाद जैन कृतित्व परिचय' पुस्तिका का आमुख लिखने की कृपा की थी और बच्चों की हस्तलिखित पत्रिका में अपना शुभाशीष।

सरस्वती के इन वरदपुत्र पं. कैलाशचंद्र जी की जन्म शती एवं १६वीं पुण्यतिथि पर उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को हमारा सादर नमन है।

- रमा कान्त जैन

सामयिक क्षणिका

आस्था के चरण इतने दृढ़ हो चले
युक्तियां उनके समक्ष हमें बौनी लगने लगीं।
चमत्कार फिर भी हो रहा यह कैसा,
निजवाणी ही अब हमें जिनवाणी लगने लगी।।

- रमा कान्त जैन

ज्योति निकुंज,
चारबाग, लखनऊ

तीर्थंकर जन्म कल्याणक का एक प्रस्तरांकन

- डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

दिल्ली के उपनगर कुतुब में कुतुबमीनार के निकट स्थित कुव्वतु-ल-इस्लाम नाम की मस्ज़िद भारतवर्ष में निर्मित सर्वप्रथम मस्जिद मानी जाती रही है।[१] कम से कम पश्चिमी पाकिस्तान की पूर्वी सीमा के इधर उत्तर भारत की वह सर्वप्राचीन मस्जिद है ही। उसके मुख्य द्वार पर अंकित शिलालेख से यह स्पष्ट है कि यह मस्जिद अनेक जैन एवं ब्राह्मणीय मंदिरों को विध्वंस करके उनके मसाले से ही बनाई गई थी। वस्तुतः आज भी उसमें उक्त जैन एवं वैष्णव मंदिरों के अनेक कलावशेष यत्र-तत्र स्पष्टतया चीन्हे जा सकते हैं। नीचे की मंजिल के संख्यांकित स्तंभ और दूसरी मंजिल के कोणों की सुखनित छतें जिन पर जैन तीर्थंकरों तथा उनसे संम्बंधित जैन मूर्तांकन स्पष्ट हैं, वे सब उक्त जैन मंदिरों से ही प्राप्त हुई सामग्री है। इनके अतिरिक्त दक्षिण दिशा की दीवाल के बाहरी ओर लगे हुए विष्णु के दशावतारों का तथा अन्य वैष्णव मूर्तियों के अंकन यह सूचित करते हैं कि वैष्णव मंदिरों के ध्वंसावशेषों का भी इस मस्जिद के निर्माण में उपयोग किया गया था।[२] यह मस्जिद शिहाबुद्दीन गौरी के नेतृत्व में मुसलमानों द्वारा दिल्ली पर सर्वप्रथम अधिकार करने के पश्चात १२वीं शती ई. के अन्त के लगभग निर्माण की गई थी।

इस मस्जिद में उपलब्ध पुरातन मूर्तांकनों में जो कई दृष्टियों से सर्वोत्कृष्ट समझा गया, वह एक प्रस्तरांकन है। मस्जिद की उत्तर दिशा की दीवाल में भूमि तल से लगभग १६ फुट की ऊंचाई पर एक साढ़े छ गुणा ४ फुट की खिड़की बनी है। उक्त खिड़की के ऊपर एक चौकोर प्रस्तर खण्ड लगा है, जिसकी लम्बाई साढ़े चार फुट और चौड़ाई साढ़े सात इंच है। उसमें से पौने छः इंच की चौड़ाई में इस सिरे से उस सिरे पर्यन्त दो भागों में विभक्त एक दृश्य अंकित है। जिस पट्ट पर वह अंकित है वह धौलपुर की खदानों से प्राप्त हल्का लाल बलुआ पाषाण है। मस्जिद के भीतरी आंगन के उत्तर-दक्षिण और पूर्व की ओर जो स्तंभावलि है वह भी इसी पत्थर से निर्मित है। पुरातत्वविदों ने इस कलाकृति को प्रारंभिक मध्यकाल अर्थात् ९वीं-१०वीं शती ई. के लगभग का अनुमान किया है।[३]

अंकित दृश्य के बाम कक्ष में बाँये सिरे पर एक दण्ड-धारी पुरुष खड़ा है, उसके आगे (दाँयी ओर बढ़ते हुए) एक राजसी शैया है-पलंग पर कमल-पुष्पांकित सुन्दर पलंगपोश बिछा है, सामने की ओर अर्ध-चन्द्राकार लटकता हुआ, ऊपर छत के नीचे एक चँदोवा तना है। शैया पर एक राजसी महिला लेटी हुई है, दाँयी भुजा सिर के नीचे है और बाँये हाथ से स्तन पकड़कर बराबर में लेटे हुए शिशु को पय-पान करा रही है। पायताने के दाँयी ओर खड़ी दासी उक्त महिला का बाँया पैर दबा रही है। एक दूसरी दासी और निकट खड़ी हुई हाथ में चौरी लिये हुए है। उसी के निकट भूमि पर एक पुरुष बैठा ऊंघ रहा है। निकट ही एक वेत्रासन रक्खा है जो सम्भवतया शैयागत महिला के दूसरा पैर फैलाने के लिए होगा। शैया दृश्य से आगे (दाँये बढ़ते हुए) एक अन्य स्त्री खड़ी है, जो अपने हाथों में एक नवजात शिशु को लिये हुए है और उसे अधखुले द्वार के निकट खड़े हुए पुरुष को दे रही है-वह पुरुष शिशु को अपनी गोद में लेने का उपक्रम कर रहा है-अधखुले द्वार के साथ यह दृश्य समाप्त होता है और तदनन्तर दृश्य का दूसरा कक्ष या विभाग प्रारंभ होता है। प्रारम्भ में एक पुरुष शिशु को गोद में लिये खड़ा है। उसके आगे एक कमल-तरु (कल्पतरु ?) है, जिसमें दोनों ओर दो-दो बन्द कमल हैं और ऊपरी सिरे पर अर्ध-चंद्राकार सा एक पूरा पुष्प खिला है। नीचे तल भाग में भी दो अधखिले और दो पूरे खिले कमल-पुष्प दिखाये गये हैं जिनके निकट मुंह खोले एक मकर अंकित है। उक्त वृक्ष के आगे फिर वही पुरुष बालक को लिये खड़ा है, जिसके आगे दो पूर्ण घट, एक के ऊपर एक रक्खे हैं, और उनके ऊपर छत से एक घट उल्टा लटकता दीख पड़ रहा है। तदनन्तर एक स्त्री उक्त पुरुष से शिशु को अपनी गोद में लेती दिखाई गई है। उसके उपरांत फिर वही शैया वाला दृश्य है, जिस पर माता और शिशु पूर्ववत लेटे हुए हैं। पलंग के पाये बैल के खुर की आकृति के बने हैं। शैया के पीछे एक कदलीवृक्ष है और सामने की ओर एक दण्ड-धारी पुरुष महिला की पाद-सेवा कर रहा है। कक्ष के बाहर, धुर दाँये सिरे पर ऊपर एक वृषभ बैठा है और नीचे एक सवत्स गौ अंकित है।[४]

भारतीय पुरातत्व विभाग के तत्कालीन डायरेक्टर जनरल रायबहादुर के. एन. दीक्षित ने इस समस्त दृश्य को कंस के बन्दीगृह में कृष्ण-जन्म और वसुदेव द्वारा बाल-कृष्ण को गोकुल ले जाकर यशोदा को सौंप आने की घटना का चित्रण अनुमान किया है।[५] सम्भव है उन्हीं का अनुमान ठीक हो, किन्तु हमने इस प्रस्तरांकन के

चित्र-फलक एवं शाब्दिक वर्णन का बारीकी से अध्ययन करने पर यह पाया कि इस दृश्य को आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के जन्म-कल्याणक का भी उसी प्रकार युक्ति-संगत एवं सजीव-चित्रण कहा जा सकता है। इन्द्राणी माता के प्रसूति-गृह में जाती है, माता को मायानिद्रा में सुला देती है, वहां स्थित दास-दासी भी ऊंघ जाते हैं। माता के पास वह एक मायामयी बालक सुला देती है और बाल-भगवान को लाकर इन्द्र की गोद में दे देती है। अधखुले द्वार से इन्द्र सानन्द कक्ष से बाहर हो जाता है। तदनन्तर वह सुमेरु पर्वत पर पहुंचता है, चित्रित तरु कल्पवृक्ष है। नीचे कमल पुष्प एवं मकरादि युक्त क्षीरसागर है, तदनन्तर दो पूर्णघट उन १०८ कलशों के प्रतीक हैं जिनसे बाल-भगवान का अभिषेक किया जाता है। तदुपरांत बाल-भगवान को इन्द्र पुनः इन्द्राणी को सौंप देता है जो उन्हें फिर माता के पास पहुंचा देती है। वृषभ भगवान आदिनाथ का विशिष्ट लांछन रहा है और गोवत्स माता मरुदेवी के मातृ-वात्सल्य के प्रतीक हैं। चित्रगत अन्य कई वस्तुओं को भी जैन प्रतीकों के रूप में चीन्हा जा सकता है।

यह ध्यातव्य है कि इस विषय में किसी को कोई सन्देह नहीं है कि एकाधिक विशाल एवं भव्य जैन मंदिरों की सामग्री का इस मस्जिद के निर्माण में उपयोग हुआ है और जिस पाषाण का यह प्रस्तरांकन है उसी के वे अनेक जैन स्तंभ बने हुए हैं जिनकी अवस्थिति का इस मस्जिद में ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। दूसरे इस प्रस्तरांकन में अथवा जहां यह लगा है उसके आस पास कहीं कोई निश्चिततया वैष्णव चिह्न या संकेत नहीं है। अस्तु क्या आश्चर्य है कि दिल्ली के श्रीधर आदि तोमरकालीन जैन कवियों ने वहां के जिन भव्य जिनालयों का वर्णन किया है यह प्रस्तरांकन उन्हीं का अंग रहा हो और इसमें तीर्थंकर के जन्म कल्याणक का दृश्य अंकित किया गया हो।

(जैन सन्देश (शोधांक) २६, (२६ फरवरी, १६६८) से साभार)

१- जर्नल यू० पी० हिस्टोरिकल सोसायटी, जिल्द १७, भाग १, पृष्ठ ८४

२- वही

३- वही, पृष्ठ ८४-८५।

४- वही, पृष्ठ ८५-८६।

५- वही, पृष्ठ ८४-८६।

सम्पादकीय

वीर निर्वाण स्थली पावा

प्रख्यात पुराणकार दि. जैन आचार्य गुणभद्र ने उत्तर पुराण (रचना-८६८ ई.) में अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण स्थल का वर्णन निम्न प्रकार किया है-

"क्रमात्पावापुरं प्राप्त मनोहर वनान्तरे।
बहूना सरसां मध्ये महामणि शिलातले।।५०६।।
स्थित्वा दिन द्वय वीत विहारो वृद्ध निर्जरः
कृष्ण कार्तिक पक्षस्य चतुर्दश्यां निशात्मय।।५१०।।
हताघाति चतुष्कः सन्नाशरीरो गुणात्मकः
गन्ता मुनि सहस्रेण निर्वाणं सर्ववांछितम्।।५१२।।

-- --- ---

(अर्थ- अन्त में वीर प्रभु पावापुर पहुंचे तथा वहां के मनोहर वन के भीतर **अनेक सरोवरों के बीच** महामणि शिला पर विराजमान हो गए। श्री विहार छोड़कर निर्जरा को बढ़ाते हुए दो दिन तक ध्यान में लीन हुए महावीर स्वामी ने कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि के अंत में अघातिया कर्मों को नष्ट कर निर्वाण पद प्राप्त कर लिया। - अनुवादकर्ता-डॉ. पन्नालाल साहित्याचार्य)

पूज्य गणिनी ज्ञानमती माताजी ने 'सम्यग्ज्ञान' पत्रिका के अक्टूबर २००३ के अंक में उपर्युल्लिखित श्लोकों का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए लिखा है कि भगवान पावापुरी के मनोहर नामक उद्यान में **कमलों से व्याप्त सरोवर के मध्य** महामणिमयी शिला पर विराजमान हुए-कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि के अंत में (उषा काल में) अघातिया कर्मों की भी निर्जरा कर उन्होंने निर्वाण पद प्राप्त किया। तब सौधर्मेन्द्र आदि इन्द्रों ने अग्नि कुमार इन्द्र के मुकुट के अग्रभाग से निर्गत अग्नि पर प्रभु का शरीर स्थापित किया तथा दिव्य चंदनादि से पूजाकर संस्कार कर दिया। उन्होंने आगे लिखा है कि चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर जी के प्रथम पट्टाधीश आचार्य वीरसागर जी कहते थे कि "पावापुरी सरोवर के मध्य मणिमयी शिला पर भगवान के मोक्ष जाने के बाद **इन्द्रों ने यहां पर बज्र से उनके चरण चिह्न अंकित कर** इस शिला को सिद्ध शिला के समान पूज्य, पवित्र बनाया था" इससे यह स्पष्ट है कि भगवान

महावीर स्वामी जहां से मोक्ष गए हैं ठीक वहीं पर उनके शरीर का संस्कार किया गया था और सरोवर के मध्य उसी मणिमयी शिला पर इन्द्र ने भगवान के चरण चिह्न वज्र से अंकित किए थे तथा भगवान सिद्धशिला पर भी ठीक उसी के ऊपर विराजमान हैं।

जैन दर्शन के अनुसार सर्वकर्म बंधनों से मुक्त हुआ सिद्धात्मा लोक शिखर के अग्रभाग पर (केवल जहां तक ही धर्म द्रव्य का सद्भाव है) जा विराजता है। सिर की गोलाई का आकार लिए हुए लोकाकाश के इस अग्रभाग को ही अलंकारिक भाषा में 'सिद्ध शिला' कहा गया है-वस्तुतः यह कोई धातु, मणि, प्रस्तर की पौद्गलिक परमाणुओं का पुंज शिला नहीं है। आचार्यों ने लोकाकाश के इस अग्रतम भाग के विस्तार के विषय में कोई उल्लेख नहीं किया है। यदि यह एक बिन्दु मात्र है तो सभी सिद्धात्माएं उसी एक बिन्दु में समाकर अपनी अन्तिम रुचिराकृति में विराजमान रहती हैं इसी को लक्ष कर कहा गया है 'एक माहि एक राजत, एक माहि अनेकनो। एक अनेक की नहीं संख्या, नमो सिद्ध निरंजनो'।।

पूज्य गणिनी जी ने इसी स्थल पर इन्द्रों द्वारा वज्र से भगवान महावीर के चरण चिन्ह अंकित किए जाने का उल्लेख इस भावना से ही किया प्रतीत होता है ताकि श्रद्धालु श्रावकों की आस्था इसे ही भगवान की सही निर्वाण स्थली निर्विवाद रूप से स्वीकारने में सुदृढ़ हो। कदाचित् ज्ञानमयी माताजी ने उन चरण चिन्हों को स्वयं भी अपने ज्ञान चक्षुओं से देखा होगा, जो हम जैसे अल्प मतियों को अपने चर्म चक्षुओं से दिखाई नहीं पड़ते। किन्तु न तो जल-मंदिर में प्रतिष्ठित चरणों के पाद लेख में इस प्रकार का कोई संकेत किया गया है, न ही श्वेताम्बर समाज में जिन्होंने उक्त जल-मंदिर का निर्माण ८०० वर्ष पूर्व या उसके बाद कराया और जो अब भी उसकी प्रबंध व्यवस्था करती है, इस प्रकार की कोई मान्यता है। इन चरणों की प्रतिष्ठा वि. सं. १२६० में (श्वे०) आचार्य श्री अभयदेव सूरि जी द्वारा कराई गई थी।

जैसा कि हम पहिले भी एकाधिक बार लिख चुके हैं, यह सर्वविदित है कि ईसवी सन् की प्रथम सहस्राब्दि की कुछ शताब्दियों में घोर धार्मिक द्वेष और अराजकता के दौर में किसी समय जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र रहे बिहार प्रदेश में जैन धर्मावलम्बियों का (जैन श्रमणों सहित) व्यापक सुनियोजित संहार किया गया था तथा बचे खुचों ने या तो धर्म परिवर्तन कर लिया या अन्य प्रदेशों में पलायन कर गए या फिर जंगलों में भागकर अपने प्राण बचाए और जंगली जीवन बिताने के लिए मजबूर हो गए,

जिनके वंशज आज आदिवासी सराक हैं। उस काल में बिहार प्रदेश के प्रायः सभी जैन तीर्थक्षेत्र भी विध्वंस कर दिए गए थे।

लगभग ८०० वर्ष पूर्व कल्याणक क्षेत्रों की यात्रा के लिए सौराष्ट्र से निकले एक श्वेताम्बर श्रीसंघ के साथ आए आचार्य श्री ने विहार प्रदेश में अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के जन्म, केवलज्ञान तथा निर्वाण क्षेत्रों को चिन्हित करने का प्रयास किया।

भगवान महावीर की प्रमुख देशना भूमि जहां से उनके धर्मचक्र (धर्म शासन) का प्रवर्तन हुआ तथा जहां उनके प्रमुख गणधर महापंडित इन्द्रभूति गौतम स्वामी ने उनके उपदेशों को द्वादशांग श्रुत के रूप में निबद्ध किया, उस पवित्र भूमि (सम्राट श्रेणिक (बिम्बसार) व अजात शत्रु (कुणीक) की राजनगरी) राजगृह (राजगिर) को उसकी पंच पहाड़ियों तथा गर्म जल के स्रोतों की ख्याति के कारण चिन्हित करने में उन्हें कदाचित कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई होगी। राजगिर से कुछ ही किलोमीटर की दूरी पर पुरी नामक ग्राम के निकट एक विशाल सुरम्य कमल सरोवर का अनुसंधान पाकर तथा उसे इस पौराणिक आख्यान से मिलता जुलता पाकर कि भगवान की चिता भस्म को मस्तक पर लगाने की होड़ में श्रद्धालु राजा-प्रजा जनों की भारी भीड़ ने उस स्थल के आसपास की भूमि भी गहरी खोद डाली जिससे वहां पर सरोवर बन गया, आचार्य श्री ने साथ में लाए चरणों को सरोवर के मध्य उभरी भूमि पर स्थापित कर उसे ही भगवान महावीर की निर्वाण स्थली घोषित कर दिया तथा श्री संघ को वहां एक भव्य मंदिर के निर्माण की प्रेरणा दी। हमारा अनुमान है कि वें आचार्य श्री अभयदेव सूरि जी ही थे जिनके द्वारा वि. सं. १२६० में प्रतिष्ठा कराए गए प्राचीन चरण आज भी पावापुरी के जल मंदिर में विराजमान हैं। जल मंदिर का मूल निर्माण भी उस ही के कुछ काल बाद का कराया गया प्रतीत होता है।

उपर्युक्त तीर्थ यात्री संघ की वापसी पर मार्ग के नगरों ग्रामों तथा उनके आसपास के क्षेत्रों में यह प्रसिद्धि फैलने पर कि भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण कल्याणक क्षेत्र का पता लग गया है तथा वहां एक भव्य जल मंदिर का निर्माण हो गया हैं, कालान्तर में (१४-१५वीं शताब्दि में) दिल्ली व आसपास की बस्तियों के दिगम्बर जैनों का भी एक विशाल तीर्थयात्री संघ दिल्ली के भट्टारक जी की अगुवाई में भगवान महावीर के निर्वाण क्षेत्र तथा अन्य कल्याणक क्षेत्रों की वंदना के लिए चल पड़ा। चूंकि दिगम्बर जैन पुराणकारों ने यह तो लिखा है कि भगवान का निर्वाण पावा

नगर के सरोवरों से युक्त मनोहर उद्यान-वन में हुआ था, उन्होंने पावा की भौगोलिक स्थिति के विषय में कोई दिशा निर्देश-संकेत (जन्म स्थान कुण्डपुर नगर के विदेह देश में स्थित होने की तरह) नहीं दिया है, तीर्थ यात्री संघ ने मनोहर जल मंदिर स्थल को सहज ही भगवान महावीर की निर्वाण स्थली स्वीकार कर ली। यह उल्लेखनीय है कि सन् १६४१ के एक लेख में ही इस पावापुरी के भगवान महावीर स्वामी का निर्वाण कल्याणक क्षेत्र होने का सर्वाधिक प्राचीन उल्लेख अब तक मिला है तथा इस क्षेत्र का विकास (अन्य मंदिरों-धर्मशालाओं आदि का उभय समाज द्वारा निर्माण) १९वीं-२०वीं सदियों में ही हुआ।

श्वेताम्बर जैन आम्नाय में संरक्षित आगमिक साहित्य के ग्रंथ कल्प सूत्र में भगवान महावीर के जीवन की प्रमुख घटनाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ को अंतिम श्रुत केवली भगवन्त भद्रबाहु स्वामी द्वारा (ई.पू. ३५० से कुछ पहिले) विरचित कहा जाता है तथा क्षमा श्रमण देवर्द्धि गणि ने वल्लभी नगर के मुनि सम्मेलन में हुई सुत्तागम की अन्तिम वाचना के आधार पर ४८३ ई. में अवशिष्ट सुत्तागम के साथ इसे भी ताड़पत्रों पर लिपिबद्ध करके संरक्षित किया था। कल्पसूत्र में भगवान के निर्वाण स्थल का जो वर्णन किया गया है, वह संक्षेप में निम्न प्रकार है-

"भगवान का अन्तिम चातुर्मास 'मज्झिम पावा' में हस्तिपाल राजा की रज्जुक शाला में हुआ। उस चातुर्मास में कार्तिकी अमावस्या के उषाकाल में भगवान महावीर ने कालधर्म को प्राप्त किया। काय स्थिति और भव स्थिति पूर्ण कर निर्वाण को प्राप्त किया और संसार के पार उतर गए। उस रात्रि नव मल्ल, नव लिच्छवि, कासी-कोसल के गण राजाओं का किसी कारण वश पावा में सम्मिलन था-- अब भाव उद्योत चला गया हम द्रव्य उद्योत करेंगे, यह विचार कर उस अमावस्या की रात्रि में उन्होंने प्रजा के साथ दीपमालिका प्रज्ज्वलित की तथा दीपों से भगवान की पूजा की।-- तभी से दीपमालिका महोत्सव मनाया जाना प्रचलित हुआ।"

इस वर्णन में भगवान महावीर का निर्वाण मज्झिम पावा में हुआ बताया गया है। मज्झिम (मध्य) शब्द के यहां पर प्रयुक्त किए जाने के प्रयोजन के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ का मानना है कि यह शब्द यह संकेत देता है कि उस काल में तीन पावा थी जिनमें मल्लों की नगरी पावा बीच की पावा थी जहां भगवान का निर्वाण हुआ। जबकि कुछ अन्य का (तथा हमारा भी) यह मानना है कि मज्झिम शब्द का

प्रयोग यह स्पष्ट करने के लिए किया गया है कि भगवान का निर्वाण पावा नगरी की बस्ती के बीच हुआ था न कि उसके बाहर के वन-उद्यान में क्योंकि सामन्यतया तो महावीर व उनके शिष्य मुनिगण बस्ती के बाहर ही ठहरा करते थे और वहीं उनके समवशरण की रचना होती थी।

प्राचीन बौद्ध साहित्य में आए उल्लेखों से वीर निर्वाण नगरी पावा की भौगोलिक स्थिति बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। उसमें केवल एक ही पावा का उल्लेख है और वह है मल्ल गणराजाओं की नगरी पावा जो उनकी दूसरी नगरी कुसीनारा (जहां बुद्ध का निर्वाण हुआ था) से मात्र १२ मील की दूरी पर दक्षिण पूर्व की ओर प्राचीन वैशाली-राजगृह राजमार्ग पर (वैशाली से १२८ मील की दूरी पर) स्थित थी। राजगृह से इसकी दूरी लगभग २३५ मील थी। मल्ल व शाक्य क्षत्रियों के प्रदेश लिच्छवियों के विदेह देश से सटे हुए गंगा नदी के उत्तर में ही स्थित थे जबकि मगध देश-राजगृह गंगा के दक्षिण का प्रदेश था। मल्ल व शाक्य क्षत्रियों ने भी गणतंत्र राज्य व्यवस्था अपनाई हुई थी।

प्राचीन बौद्ध ग्रंथों-दीघ निकाय एवं मज्झिम निकाय के अनुसार भगवान महावीर के निर्वाण के समय भगवान बुद्ध शाक्य देश में विराज रहे थे, तथा उनके एक उपासक चंद समुद्देश ने पावा से उसी दिन चलकर रात्रि में भगवान बुद्ध को निगण्ठ णाय पुत्त (भगवान महावीर) के निर्वाण का समाचार दिया था। इससे स्पष्ट है कि शाक्य देश भी पावा से अधिक दूरी पर नहीं था। बुद्ध ने अपना अन्तिम भोजन पावा में चन्दकर्मार के घर किया था तथा उसे खा कर वे भयंकर रक्तातिसार से पीड़ित हो गए थे। अपना अंतिम समय निकट जान तथा कुसीनारा में (जहां कि उनके उपासक बड़ी संख्या में थे) देह त्यागने की इच्छा से ८० वर्षीय बुद्ध एक ही दिन में गिरते-पड़ते, बैठते-उठते तथा एक छोटी नदी (जो वर्तमान में घाघी नदी कहलाती है) पार करके अपने प्रिय शिष्य आनन्द के साथ कुसीनारा के निकट पहुंच गए थे।

राजा हस्तिपाल या तो पावा के गणाधिपति थे या पावा की हस्तिसेना के नायक कोई गणराजा थे। 'रज्जुक शाला' का अर्थ कुछ विद्वानों ने पुराना (जो तब प्रयोग में नहीं आ रहा था) कर्मचारी भवन किया है। हमारी समझ मे यह हस्ति सेना की रस्सियां रखने का पुराना गोदाम भी हो सकता है।

भगवान महावीर के निर्वाण कल्याणक महोत्सव में सम्मिलित हुए पावा के मल्ल गणराजाओं तथा प्रजा के अतिरिक्त, नव मल्ल, नव लिच्छवि, कासी कोसल के

गणराजा भी सम्मिलित थे। पावा में गणराजाओं का सम्मिलन तथा तत्कालीन मगध सम्राट अजातशत्रु (जबकि वह भी भगवान का उपासक था) या उसके किसी प्रतिनिधि का इस अति महत्व पूर्ण अवसर पर उपस्थित न होना भी यह दर्शाता है कि यह पावा मल्ल गणराजाओं की नगरी थी जो राजग्रह से बहुत दूर थी और उनकी दूसरी नगरी कुसीनारा के ही सन्निकट थी।

सन् १८७६-७७ ई. में भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के प्रमुख अधिकारी जनरल ए कनिंघम व विशेषकर उनके सहायक ए. सी. एल. कार्लाइल के द्वारा किए गए उत्खनन व पुरातत्विक खोजों तथा उनके द्वारा दिए गए अकाट्य तर्कों ने यह सिद्ध कर दिया कि भगवान महावीर की सही निर्वाण स्थली, मल्ल गणराजाओं की नगरी, पावा के पुरावशेण उत्तर प्रदेश के कुशीनगर जिले में कुशीनगर से १५-१६ कि.मी. दूर वैशाली के प्राचीन राजमार्ग पर स्थित सठियांवडीह-फाजिलनगर के प्राचीन टीलों के नीचे दबे पड़े हैं, जो विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए है। वहां के उत्खनन में एक सील भी मिली है जिस पर सठियांव अंकित पढ़ा गया है। पुरातत्व विज्ञों ने साठियांव को श्री पावा का अपभ्रंश रूप माना है। वर्तमान में प्रायः सभी इतिहासकारों, पुरातत्व विदों एवं अनेक प्रमुख जैनाचार्यों (आ. श्री देशभूषण म., आ. श्री विमलसागर म, आ. श्री भरतसागर म., आ. श्री विद्यानंद मुनि जी, आ. श्री हस्तिमल म., आ. श्री नगराज जी डी. लिट, आ. श्री विजयेन्द्र सूरि जी आदि) ने भी कनिंघम-कार्लाइल के द्वारा दिए गए अकाट्य प्रमाणों-तर्कों के प्रकाश में इसे ही सही वीर निर्वाण स्थली पावा स्वीकार किया है। इसके आस पास के क्षेत्र में मल्ल क्षत्रियों के वंशज आज भी बड़ी संख्या में निवास करते पाए जाते हैं।

गोरखपुर, देवरिया जनपदों तथा पश्चिमी बिहार की दिगम्बर जैन समाज के प्रमुख विबुधजनों ने ऐतिहासिक साक्ष्यों एवं पुरातात्विक खोजों की यथार्थता स्वीकार करते हुए ३०-४० वर्ष पूर्व वर्तमान कुशीनगर जनपद के सठियांव डीह-फाजिलनगर में पावा नगर सिद्ध क्षेत्र का पुनर्निर्माण करा दिया है। सन् १९९६ में यहां प्रथम पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भी सम्पन्न हुई तथा मंदिर, मानस्तम्भ और धर्मशाला का भी निर्माण हो गया है। क्षेत्र का प्रबंध 'श्री दिगम्बर जैन पावानगर सिद्धक्षेत्र कमेटी' द्वारा किया जाता है जो उत्तरांचल व भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटियों से सम्बद्ध तथा मान्य है।

इस सिद्धक्षेत्र की स्थापना के वर्षों पूर्व २०वीं सदी के चौथे दशक में एक बहुमान्य स्थानीय वैष्णव संत बाबा राघवदास ने कनिंघम-कार्लाइल की पुरातत्विक खोजों को स्वीकार करते हुए भगवान महावीर के निर्वाण की पुण्य स्मृति पर इस स्थल पर कतिपय राजनेताओं के सहयोग से भगवान महावीर हाईस्कूल की स्थापना की थी जिसे प्रदेश की राज्य सरकार ने सन् १९७४-७५ में भगवान महावीर का २५००वां निर्वाण वर्ष मनाने के लिए गठित की गई राज्य समिति की संस्तुति पर डिग्री कालिज के रूप में समुन्नत कर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी। सरकार ने क्षेत्र तक पक्की सड़क भी बनवा दी है।

यद्यपि गोरखपुर, देवरिया, कुशीनगर आदि निकट के नगरों तथा पश्चिमी बिहार से जैन समाज के अनेक प्रबुद्ध जन कार्तिकी अमावस्या को निर्वाण लाडू चढ़ाने तथा भगवान का निर्वाण महोत्सव मनाने पावानगर सिद्धक्षेत्र नियमित रूप से जाने लगे हैं, तथापि नालन्दा जिलान्तर्गत पावापुरी के प्रति रूढ़िगत मान्यता के चलते जैन समाज की व्यापक श्रद्धा का केन्द्र यह अभी तक नहीं बन पाया है। आज हमारे अनेक महामुनि/आर्यिका माताएं अपने या अपने गुरुवर्य के नाम को अमरत्व प्रदान करने के प्रयोजन से नए-नए अतिशय क्षेत्र करोड़ों-करोड़ों की लागत से सृजित करने/कराने में प्रयत्नशील हैं तथा अपने ध्येय में सफल भी हो रहे हैं। आवश्यकता है किसी ऐसे ही प्रभावक महामुनि/आर्यिका माता की जो अंतिम तीर्थंकर के अन्तिम कल्याणक के इस पावन क्षेत्र के भव्य विकास को ही अपने शेष साधु जीवन का ध्येय बनाकर प्रयत्नशील हो जाएं।

क्या ही अच्छा होता यदि जगतवंद्य भगवान महावीर के २६०० वें जन्मोत्सव वर्ष के उपलक्ष्य में भारत सरकार द्वारा घोषित १०० करोड़ रुपये की राशि में से आवश्यक धन सटियांव-डीह के प्राचीन टीलों के गहन एवं विस्तृत उत्खनन के लिए भारतीय पुरातत्विक सर्वेक्षण विभाग को उपलब्ध करा दिया जाता ताकि उन टीलों में सोए पड़े मल्लों की पावानगरी के पुरावशेष मुखरित होकर कह उठते 'देखो हमें ही अन्तिम तीर्थंकर की अन्तिम चरण रज को धारण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, हम ही उनके अन्तिम कल्याणक के प्रत्यक्षदर्शी हैं, हम ही उनकी अन्तिम स्मृति संजोए हुए हैं'। इस ऐतिहासिक वर्ष में इससे बढ़कर और कोई श्रद्धांजलि भगवान महावीर के चरणों में कदाचित् अर्पित नहीं की जा सकती थी। दुख है कि हमारी शीर्ष नेताओं की निष्क्रियता एवं उदासीनता से यह संभव नहीं हुआ।

- अजित प्रसाद जैन

मंगल श्लोक की प्राचीनता

शोधादर्श ४२ में ''तीर्थंकरों की संख्या और जैन धर्म की प्राचीनता'' लेख के अंत में जस्टिस एम.एल. जैन साहब ने लिखा है कि दिगम्बरों और श्वेताम्बरों दोनों में प्रचलित मंगलाचरण ''मंगलम् भगवान वीरो,'' केवल १००-१५० साल पुराना लगता है। पढ़कर मुझे भारी आश्चर्य हुआ था कि जस्टिस एम. एल. जैन सरीखे सुलझी समझ वाले विद्वान इस तरह का निष्कर्ष बिना किसी तथ्य के आधार पर कैसे निकाल सकते हैं। उपरोक्त मंगलाचरण हजारों बरस पुराना है। वस्तुस्थिति तो यह है कि उपरोक्त मंगलाचरण के आधार पर हिन्दुओं में ब्राह्मणों ने भी ''मंगलम् भगवान विष्णु'', नामक मंगलाचरण बना लिया। मुझे अपनी विवशता पर तरस भी आता रहा कि मैं कोई विद्वान तो हूँ नहीं जो खोज करके उपरोक्त मंगलाचरण के प्रारंभ काल को खोज निकालूं। अभी 'प्राकृत-विद्या' के जून २००३ के अंक में (पृष्ठ २) यह पढ़कर अतीव प्रसन्नता हुई कि उपरोक्त मंगलाचरण का शुद्ध (मूल प्राकृत) पाठ निम्न प्रकार से है-

''मंगलं भगवदो वीरो, मंगलं गोदमो गणी।
मंगलं कोण्डकुंदाई, जेण्ह धम्मोत्थु मंगलं।।''

उपरोक्त मूल पाठ प्राकृत में है जो स्वयं ही पाठ की प्राचीनता को उजागर करता है। ''मंगलं भगवान वीरो,'' उपरोक्त ''मंगलं भगवदो वीरो,'' का संस्कृत रूप है। प्राकृत मंगल पाठ एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य की ओर भी इंगित करता है वह है 'जैन धर्म' शब्द का उपयोग। अतः मंगलाचरण का प्राकृत रूप निश्चित रूप से तमाम भ्रांतियों को निर्मूल कर सही दिशा में निर्देशित करने में सक्षम है।

(विद्वज्जनों एवं सुधी पाठकों से अनुरोध है कि साहित्यिक आधार पर इस विषय पर और प्रकाश डालें। - प्रधान सम्पादक)

- इंजीनियर नीलमकांत जैन

५२२, अभिनव अपार्टमेंट्स, बी-१२, वसुंधरा एन्क्लेव, दिल्ली- ९६

१२५वीं जन्म जयन्ती पर स्मरण

ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद

- डॉ. शशि कान्त

सीतलप्रसाद जी का जन्म नवम्बर १८७८ ई. (कार्तिक कृष्ण ८, वि.सं. १९३५) में हुआ था। तदनुसार नवम्बर २००३ ई. में उनके जन्म की १२५वीं जयन्ती है। वह लखनऊ में जन्मे, यही उनकी विशेष कर्मस्थली रही और यहीं १०.२.१९४२ ई. को उनकी मृत्यु हुई, अतः लखनऊ के लिए उनका स्मरण विशेष गौरव की बात है।

उनके विषय में स्रोत-सामग्री के रूप में निम्नलिखित का उल्लेख किया जाना उपादेय होगाः-

१. अजित प्रसादः अज्ञात जीवन (१९५१ ई.)

२. अयोध्या प्रसाद गोयलीय : जैन-जागरण के अग्रदूत (१९५२ ई.)

३. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन : ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद (१९८५ ई.)

'अज्ञात जीवन' बा. अजित प्रसाद (लखनऊ) की आत्मकथा है और इसमें उन्होंने अपने मित्र एवं सहयोगी सीतलप्रसाद का प्रसंगानुकूल उल्लेख किया है (कदाचित् मुद्रण की त्रुटि के कारण नाम 'शीतलप्रसाद' हो गया है)। गोयलीय जी ने अपनी पुस्तक में १८५०-१९५० ई. के ३७ समाज-चेताओं के सम्बंध में समसामयिकों के संस्मरण और परिचयात्मक विवरण संकलित किये हैं और अपनी धारणा में महत्व की दृष्टि से पुस्तक का प्रारम्भ सीतलप्रसादजी से किया है। डॉ. जैन ने अपनी पुस्तक में सीतलप्रसाद जी के संबंध में सभी आवश्यक सामग्री को जांचकर, उनके समाजोन्नायक क्रांतिकारी युग-पुरुष की भूमिका को रेखांकित करते हुए, उनका जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया है, तथा उनकी सभी ज्ञात रचनाओं का भी उल्लेख किया है; कदाचित् उनके दिवंगत होने के बाद ४३ वर्ष में भाषा शुद्धि के चक्कर में 'सीतल' 'शीतल' हो गया। डॉ. साहब ने 'तीर्थंकर' पत्रिका के जैन पत्र-पत्रिकाएं विशेषांक (अगस्त-सितम्बर १९७७ ई.) में पृ. १३ पर अपने संस्मरण में और श्री रमाकान्त जैन ने उसी पत्रिका के पृ. ३९-४५ पर 'सनातनजैन' विषयक अपने लेख में सीतलप्रसाद जी के व्यक्तित्व के कतिपय पक्षों को उजागर किया है।

हाल ही में हमें ब्र. सीतलप्रसाद जी के अपने मित्र बा. अजित प्रसाद (लखनऊ) को १५.१.१६२७ से १.३.१६३० ई. के दौरान लिखे पत्र और भजन आदि देखने का सुयोग मिला। ये पत्रादि अजित प्रसाद जी के सुपुत्र श्री कैलाश भूषण जिन्दल के सौजन्य से सीतलप्रसाद जी के किन्हीं संबंधियों को कुछ वर्ष पहले हस्तगत हुए थे और हमारे संज्ञान में हमारे मित्र श्री नरेश चन्द्र जैन के माध्यम से आए। ये कागज़ात ऐतिहासिक दस्तावेज़ हैं और सीतलप्रसाद जी के विषय में तथा तत्कालीन दिगम्बर जैन समाज की स्थिति के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं। इन पत्रादि में उन्होंने अपने हस्ताक्षर 'ब्र. सीतल' या **'Sital'** किये हैं। इससे स्पष्ट है कि उनका नाम 'सीतलप्रसाद' था, न कि 'शीतलप्रसाद'।

उनका जन्म लखनऊ के मोहल्ला सराय माली खां, चौक, में हुआ था। उनके पितामह का नाम मंगलसेन और पिता का नाम मक्खनलाल व माता का नाम नारायनी देवी था। उनके अग्रजों के नाम संतूमल और अंतूमल थे, अनुज का नाम पन्नालाल था और बहन का नाम राधाबीबी था, अतः उनका वास्तविक नाम भी उसी परम्परा के आधार से होगा जो अब किसी को मालूम नहीं है। वह ८ वर्ष की आयु में अपने बाबा के पास कलकत्ता (कोलकाता) चले गए थे जहां उन्होंने स्कूली शिक्षा प्राप्त की थी और १८६६ ई. में १८ वर्ष की आयु में मैट्रिकुलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। उस समय जो विचारवान लड़के स्कूली शिक्षा प्राप्त करते थे, उनमें स्वयं को जैनत्व से जुड़ा होना प्रकट करने की इच्छा हुआ करती थी, अतः सीतलप्रसाद जी ने स्कूल में ७वीं-८वीं कक्षा में कदाचित् अपना असली नाम हटाकर तीर्थंकर शीतलनाथ के आधार से अपना नाम 'सीतलप्रसाद' लिखाया प्रतीत होता है।[1] बंगाल में 'श' को 'स' उच्चरित करने का चलन था इसीलिए 'शीतल प्रसाद' के स्थान पर 'सीतलप्रसाद'; नाम प्रसिद्ध हुआ और वह अपना यही नाम बराबर लिखते रहे। १३ दिसम्बर १६०६ ई. को सप्तम् प्रतिमा का व्रत धारण करने के बाद वह 'ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद' के नाम से विख्यात हुए।

१८६३ ई. में १५ वर्ष की आयु में सीतलप्रसाद जी का विवाह कोलकाता में श्री छेदीलाल गुप्त की कन्या के साथ हुआ। १८६६ में उन्होंने मैट्रिकुलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण की, और इसके बाद वह सपत्नीक लखनऊ वापस आ गए। लखनऊ में एक कंपनी में एकाउन्टेन्ट की नौकरी करते हुए १६०१ ई. में उन्होंने रूड़की इंजीनियरिंग कालेज से परीक्षोपरान्त एकाउन्टेन्ट का प्रमाणपत्र प्राप्त किया और तत्पश्चात्

अवध-तिरहुत रेलवे के लेखा विभाग में नियुक्त हो गए। १६०३ ई. में इनके पिता का देहान्त हो गया और १६०४ ई. में प्लेग की महामारी में ६ मार्च को माता का, १३ मार्च को पत्नी का तथा १५ मार्च को छोटे भाई का निधन हो गया। उनके दाम्पत्य जीवन के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती सिवाय इसके कि पत्नी यद्यपि वैष्णव परिवार से आई थी, उसने पति के कुलधर्म, जैनधर्म, को अंगीकार कर लिया था और प्रायः १० वर्ष के विवाहित जीवन के बाद भी उन्हें कोई संतान नहीं हुई थी। एक सप्ताह के भीतर ही ३ निकटतम आत्मीयों की मृत्यु ने युवा सीतलप्रसाद के मन में सांसारिक देह-भोगों से विरक्ति का आवेश प्रसूत किया और उसी आवेश में उन्होंने १६ अगस्त १६०५ ई० को रेलवे की नौकरी से भी त्यागपत्र दे दिया। पारिवारिक त्रासदी के समय सीतलप्रसाद २५ वर्ष के पूर्ण युवा थे और यदि उनके स्वजनों व मित्रों ने उनको सही रूप से सम्बोधा होता तो शायद वह गृह-त्यागी न बनते वरन् सद्गृहस्थ के रूप में समाज एवं धर्म की सेवा कदाचित् अधिक सकारात्मक रूप से कर पाते।

उपरोक्त पारिवारिक त्रासदी के बाद वह लखनऊ के बा. अजित प्रसाद वकील के निकट सम्पर्क में आए और उनकी मैत्री १० फरवरी १६४२ ई. को शरीर शांत होने तक बनी रही। १६०५ ई. में ही वह मुम्बई के सेठ माणिकचंद्र के सम्पर्क में भी आए और धर्म एवं समाज की सेवा के कार्य में एकनिष्ठ होकर जुट जाने के उद्देश्य से उनके आग्रह पर उनके साथ कुछ वर्ष के लिए मुम्बई चले गए। वहां वह माणिकचंद्र जी की सुपुत्री मगनबाई के सम्पर्क में आये और समाजसेवा के अभियान में सहयोगी और मित्र के रूप में जब तक मगनबाई जीवित रहीं उनका सम्पर्क बना रहा। मगनबाई जी का ७ फरवरी १६३० ई० को मुम्बई में देहान्त हो गया;[२] उनकी शव यात्रा में सीतलप्रसाद जी शरीक हुए तथा उनके शव पर बारह भावना भाई, और १ मार्च १६३० ई. को उनकी स्मृति में निम्नलिखित लावनी की रचना की-

देख क्षणिक सब दृश्य विश्व के, सत् स्वरूप चिंतन कर लो।
मोह शोक सब त्याग, आप में साम्य भाव निशदिन धर लो।टेक।।...
बड़े-बड़े सम्राट वीर योद्धा, इस जग में आते हैं,
कर्तब करते अहंकार के, खूबी रंग मचाते हैं।
आन बाजे बाजा यम का, सब छोड़ एकले जाते हैं,
क्षण भंगुर यह जीवन है, यह पाठ सदा सिखलाते हैं।।

इसे जान सफल कर जीवन को, निज में ही निजता को धर लो।।१।देख...
जैन जाति नारी शिक्षा बिन, जीवन दुखद बिताती थी,
कन्याओं की शिक्षा तब, अपशकुन सी समझी जाती थी।
तब ही ले तलवार सुशिक्षा, मिटा दिया अज्ञान महा,
घर-घर फैला चर्चा विद्या, फलोभूत पुरुषार्थ लहा।।
वह है वीर रत्न महिला, उसका करतब सुमरण कर लो।।२।। देख.....
विधवा हो उन्नीस वर्ष में, संस्कृत का अभ्यास किया,
जैन धर्म ग्रन्थों को पढ़, हिय रत्नत्रय परकाश किया।
धनशीला पुत्री होकर भी, सब विलास परित्याग किया।
देश-देश में दौरा करके, शिक्षा जमघट जमा दिया।।
विधवा हित खोला आश्रम पहला, यह कारज चित धर लो।।३।। देख.......
बिता दिए पच्चीस वर्ष, अनुपम सेवा के करने में,
तन-मन-धन न्यौछावर करके, जैन जाति हित करने में।
महिला परिषद संचालन कर, महिलादर्श चलाया है,
जैन जाति महिलाओं में, शुभ लेखन तत्व बढ़ाया है।।
श्रेष्ठी माणकचंद सुपुत्री, मगन नारि गुण हिय धर लो।।४।देख...
खद्दर मोटा पहन के, जिसने संयम में दिल को डाला,
शाकाहार विचार शुद्ध कर, शील धर्म को सत् पाला।
अध्यात्म रस-पान पानकर, समयसार दधि मथ डाला,
रख प्रसन्न आतम को, निशदिन जैन तत्व फल चख लो।
कर प्रमाद का चूर्ण भविक जन, तुम भी यह साहस कर लो।।५।। देख.....
है जीवन बहु समयों का, नहिं वृथा गमाना है अच्छा,
स्वातम तत्व समझकर, निज में निज का सुख पाना अच्छा।
स्वार्थ त्यगा कर, जाति देश की सेवा कर जाना अच्छा,
तिरस्कार निन्दा आपत् से, विचलित नहीं होना अच्छा।।
सुखसागर में मगन रहो, हो वीर कर्म रिपु को हर लो।। ६।। देख.....

श्री गोयलीय के अनुसार 'मगन बहन उनके वैराग्य में भीगे हृदय से परिचित थीं। उनसे उपदेश श्रवण करते समय, अध्ययन करते समय, उनकी समाजसेवा की अहर्निश लगन तथा सामायिक प्रतिक्रमण से वह भली प्रकार समझ गई थीं कि इस

मुमुक्षु को घर में बांधकर कोई न रख सकेगा। उसी आशंका ने श्री सीतलप्रसाद जी के त्यागी वेश के वस्त्र तैयार कर देने की उन्हें प्रेरणा दी। यह मगन बहन का परम सौभाग्य था कि दीक्षा लेते ही ब्रह्मचारी जी ने उनके तैयार किए हुए वस्त्र ग्रहण किए।' उसी प्रकार के वस्त्र ब्रह्मचारी जी तत्पश्चात् पहनते रहे।

रोहतक से ७.८.१९२८ को ब्रह्मचारी जी ने बा. अजित प्रसाद को लिखा था- Bhajans received from Smt. Maganbai are being sent per messenger. There seem to be some, copies of which are with you also. I used to send her each copy of Bhajan sent to you. Please compare them. If you want that there may not be any mistakes, you may send me to inspect the matter before giving it for print. आध्यात्मिक सुखसागर में लीन उनकी पद्य रचनायें 'सुखसागर भजनावली' के रूप में २ भागों में प्रकाशित हुई थीं। जो हस्तलिखित पद्य रचनायें हमें उनके ऊपर उल्लिखित पत्राचार में देखने को मिलीं, उनसे इंगित होता है कि नामकरण का आधार प्रत्येक रचना की अन्तिम पंक्ति में 'सुखसागर' या 'सुखोदधि' होना है।

सीतलप्रसाद जी प्रायः ३७ वर्ष गृह-त्यागी रहे और दिगम्बर जैन समाज में जागृति एवं सामाजिक चेतना संचरित करना तथा जैन ग्रन्थों का स्वाध्याय कर उन्हें प्रकाश में लाना ही उनके जीवन का उद्देश्य रहा। नवम्बर १९२२ ई. में सुधारवादियों के मंच के रूप में दिल्ली में अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद की स्थापना की गई थी और स्थापना करने वालों की सूची में पहला हस्ताक्षर ब्र० सीतलप्रसाद का था। उस समय जैन समाज में भारत की अन्य समाजों के समान ही रूढ़िवादिता का बोलबाला था जिसके अन्तर्गत बाल-विवाह, स्त्री शिक्षा का निषेध और विधवाओं की दुर्दशा, प्रमुख थे। बाल-विवाह के कारण विशेष रूप से विधवाओं की संख्या में वृद्धि होती थी। प्रायः यौवनावस्था प्राप्त करने के पहले ही बहुत सी बालाएं विधवा हो जाती थीं और जीवन भर परिवार में एक तिरस्कृत और संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत करती थीं। विधुर हो गए युवकों को भी पुनर्विवाह करने में अड़चन होती थी। यदि कोई युवक २० वर्ष की आयु में भी विधुर हो जाता था तो उसका विवाह होने में उसे दुहेजु कहा जाता था। १९२० के दशक में स्थितिपालकों ने विधवा-विवाह के विरुद्ध विशेष रूप से अभियान छेड़ा और सुधारवादियों ने विधवा-विवाह के समर्थन में आंदोलन किया।

ब्र० सीतलप्रसाद जी को विधवा-विवाह का समर्थन करने के कारण समाज के कुछ लोगों द्वारा विशेष रूप से प्रताड़ित किया गया था और उनका जगह-जगह बहिष्कार कराया गया था। १९२७-२८ में लिखे गए पत्रों में ब्रह्मचारी जी ने अपने इस सामाजिक बहिष्कार की पीड़ा को व्यक्त किया है। वर्धा से १५.१.१९२७ ई. को उन्होंने बा. अजित प्रसाद को लिखा था- I reproached grand opposition at Parwar Sabha Bina through Varni Ganesh Prasadji. It is regretted they do not have points to refute widow-marrige and want to oppose by animal and non-Jain Hinsatmic means. Jains are so degraded that they cannot think their own good, Yet we must do our duty without fear and reward. I wish some learned gentlemen like you must also come forward for this sacred cause. No doubt, it requires great sacrifice and power to bear unbearable abuses and censures, Yet true brave sons of Vira must bear all and save Jainism from decilne. पुनः देवरी कलां से १.१.१९२८ को उन्होंने लिखा था- I attended Parwar Sabha at Bina. Here President Manoharlall Tahsildar supported cause of remarriage of widows. I delivered open lecture on it. 3000-4000 Jain men and women were impressed. Varni Ganesh Prasad could not refute us. He took disgustful repressive measures with consultation of Chavare Vakil who attended, returning from Allahabad. Singhai Gokul Chand Vakil Damoh rebuked him in public meeting. Great propaganda. You should cast off all other thought of personal gain and loss and come forward boldly to join me in my work to save Jains from dying and remove agony of young widows. Life is short. Brave are those who sacrifice for good of others........I am glad that my cause is breeding and I am rebuked everywhere by ignorant and greeted by the wise. इन पत्रों से विदित होता है कि विधवा-विवाह के संबंध में बुन्देलखण्ड की परवार समाज में उनका विरोध हुआ और वर्णी गणेश प्रसाद[३] आक्रामक विरोध के नेता थे तथा कोई चवरे वकील[४] उनके सलाहकार थे। ये दोनों ही सज्जन परवार जाति के नहीं थे, जबकि स्वयं परवार सभा के अध्यक्ष मनोहरलाल तहसीलदार और दमोह के सिंघई[५] गोकुल चंद वकील इस सुधारवादी कार्यक्रम के समर्थक थे।

ब्रह्मचारी जी ने विधवा-विवाह के प्रचार के लिए जनवरी १६२७ में ही 'सनातन जैन' नाम से एक पत्र प्रकाशित करने का ध्येय बनाया था और नवम्बर १६२७ में इसका प्रकाशन भी प्रारम्भ कर दिया था। तब उनका विचार था कि वर्धा को ही हेडक्वार्टर बनाकर 'सनातन जैन' पत्र के माध्यम से प्रचार कार्य किया जाए परन्तु मई १६२८ तक छह माह में ही उन्हें आभास हो गया कि 'सनातन जैन' का स्वतंत्र अस्तित्व अभीष्ट है जो वर्धा में संभव नहीं है। उनके पत्रों के प्रासंगिक अंश उल्लेखनीय हैं-वर्धा (१५.१.१६२७) :- I am trying my best for Sanatan Jain. Cannot improve messages for want of funds and fear of loss. You should supply some learned articles, if possible without name. वर्धा (20-11-1927) :- "Sanatan Jain" must have been received by you. This is my programme of work, Please consider over it and let me know if I have done right or wrong. Read the paper word by word. I have fixed my headquarter here.. और सजोत (31-5-1928) :- I wish to be free in 'Sanatan jain'. To be dependent on Jain Jagat will lose my activities. Jain junta is the same as before. I am laboring alike. What defects? Let me know them.

'सनातनजैन' मासिक पत्र के रूप में नवम्बर १६२७ से १६५० तक प्रकाशित हुआ। इसका प्रमुख उद्देश्य विधवाओं का उद्धार करना था-

विधवा दीन अनाथ का, करो जन्म उद्धार।
जिससे इस भव सुयश हो, परभव पुण्य अपार।।

प्रारम्भ में यह वर्धा से प्रकाशित हुआ परन्तु १६३०-३१ के लगभग इस पत्र का कार्यालय वर्धा से बुलन्दशहर आ गया और बा. भोलानाथ जैन 'दरख्शां' (बुलंदशहर) व बा. विश्वम्भरदास गार्गीय जैन (झांसी) इसके सम्पादन से जुड़ गए। प्रकाशक निरन्तर ही बा. मंगतराय जैन 'साधु' मुख्तार, बुलन्दशहर, रहे। जब तक यह पत्र प्रकाशित होता रहा इसमें संस्थापक के रूप में ब्रह्मचारी जी का नाम दिया जाता रहा। उपरोक्त पत्रों से उनकी इस पत्र के संबंध में भावना से पता चलता है कि वह अपने मिशन को सार्थक करने के लिए इस पत्र से प्रबुद्ध लेखकों को जोड़ना चाहते थे।

'जैन जगत' के संपादक पं. दरबारीलाल 'सत्यभक्त'[६] प्रारम्भ में उनके सहयोगी थे परन्तु 'जैन जगत' के तत्कालीन अंकों को देखने से विदित होता है कि पं. दरबारीलाल वैचारिक दृष्टि से कुछ अधिक क्रांतिकारी थे जब कि ब्रह्मचारी जी

धर्म-शास्त्रों की आस्था से कुछ अधिक बंधे थे, अतः उनका वैचारिक तादात्म्य अधिक नहीं चल सका।

इन पत्रों से विदित होता है कि ब्रह्मचारी जी बा. अजित प्रसाद को Sacred Books of Jainas Series को प्रारंभ कराने वाले कुमार देवेन्द्र प्रसाद की जीवनी और बैरिस्टर जे. एल. जैनी की जीवनी लिखने के लिए प्रेरित करते रहे, तथा **'पुरूषार्थ-सिद्धयुपाय', 'गोमट्टसार'** के **जीवकाण्ड** व **कर्मकाण्ड** और **'-समयसार'** के अंग्रेजी अनुवाद के प्रकाशन के लिए प्रोत्साहित करते रहे थे। वर्धा से २०.११.१९२७ को उन्होंने लिखा था- I take pledge today till February 28 not to eat sugar Rasa out of 6 till I hear that Gomatsara is being bound and you have issued notice in the papers for sale. If I hear this good news within this period I can then take sugar. Owing to deep hearty care for Gomatsar, I have done this. I hope you will manage as soon as possible and do not be grieved for it. We must sacrifice for good cause. यह ब्रह्मचारी जी की जैन धार्मिक साहित्य को विश्व के प्रबुद्ध जगत से परिचित कराने की उत्कट लगन का परिचायक है।

ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद जी एक सुधारवादी समाजचेता, निष्ठावान धर्म-पालक, जैन ग्रन्थों के अंग्रेजी-विद् आधुनिक जगत में प्रचारक और मानवीय संवेदना से भरपूर जैन धर्म के मिशनरी के रूप में सदैव स्मरणीय रहेंगे। १२५वीं जन्म जयंती पर उन्हें प्रबुद्ध जैन समाज की विनयांजलि अर्पित है।

पाद-टिप्पणी-

१. इस प्रकार स्कूल में नाम परिवर्तन के कतिपय उदाहरण हमारे संज्ञान में हैं। 'अज्ञात जीवन' (पृष्ठ २६) से विदित होता है कि बनारसीदास के पौत्र और देवी प्रसाद के पुत्र ने १८८७ ई. में ६वीं कक्षा में प्रवेश लेने पर अपना नाम 'कल्लूमल' से बदलकर, कदाचित् तीर्थंकर अजितनाथ के आधार से, 'अजितप्रसाद' लिखवाया था, जो लखनऊ के 'बा. अजित प्रसाद' के नाम से विख्यात हुए।

२. मगनबाई मुम्बई के सेठ माणिकचंद्र की कनिष्ठ पुत्री थीं। उनका जन्म १८७६ ई. (पौष कृष्ण १०, वि.सं. १९३६) में हुआ था। इस आशंका से भयभीत होकर कि आयु अधिक हो जाने पर विधुर तो मिलेंगे पर क्वारे लड़के नहीं मिलेंगे, मात्र १३ वर्ष की आयु में उनका विवाह कर दिया गया। परन्तु ६ वर्ष बाद ही मात्र १९ वर्ष की यौवनावस्था में वह सन्तानविहीन विधवा हो गई। तब पिता उन्हें अपने

घर ले आए और उन्हें विधवाओं की दशा सुधारने के कार्य में जुट जाने के लिए प्रेरित किया। सीतलप्रसाद जी से १६०५-०६ में मुम्बई प्रवास के दौरान उन्हें समाज सेवा की बहुत प्रेरणा मिली। स्त्रियों में जागृति संचरित करने और उनमें शिक्षा का प्रचार करने के मिशन में मगनबाई जी को ब्र. सीतलप्रसाद जी का सहयोग बराबर मिलता रहा। फरवरी १६१० ई. में मगनबाई जी के प्रयत्न से भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला परिषद की स्थापना हुई और वह उसकी मंत्री निर्वाचित हुईं। महिलाओं में लेखन की प्रवृत्ति को जागृत करने के उद्देश्य से उन्होंने १६२१ ई. में महिला परिषद के मुखपत्र के रूप में 'जैन महिलादर्श' मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया और सम्पादन का दायित्व चन्दाबाई जी को सौंपा। खेद की बात है कि 'जैन महिलादर्श' अब मगनबाई जी के संस्थापना श्रेय को भूल चुका है।

३. वर्णी गणेश प्रसाद बुन्देलखण्ड की असाठी वैश्य जाति के थे और मूलतः वैष्णव थे। पूर्ण यौवनावस्था प्राप्त करने तक वह विधुर भी हो गये थे। जैन धर्म में उनकी प्रवृत्ति और निष्ठा का श्रेय बाल-विधवा सिंघैन चिरौंजी बाई के मातृवत स्नेह को था।

४. चवरे वकील महाराष्ट्र प्रदेश की सैतवाल जाति के थे जिनके यहां पुनर्विवाह और विधवा-विवाह पर प्रतिबंध नहीं था।

५. बुन्देलखण्ड के दिगम्बर जैन परवार समाज में सिंघई (स्त्री. सिंघैन) की उपाधि प्रतिष्ठा और धर्मनिष्ठता की सूचक रही है।

६. पं. दरबारीलाल 'सत्यभक्त' का जन्म १० नवम्बर १८६८ ई. को हुआ था और लगभग १६२५ से १६३३ तक वह 'जैन जगत' पत्र के सम्पादक रहे। स्वयं विधुर होने पर एक विधवा से विवाह कर उन्होंने विधवा-विवाह आंदोलन को एक सकारात्मक आयाम दिया। तत्कालीन जैन समाज ने उनका बहिष्कार किया परन्तु वह विचलित नहीं हुए और अपनी क्रांतिकारी विचारधारा के अनुरूप वर्धा के निकट ही १६३४ ई. में उन्होंने सत्याश्रम की स्थापना की।

- ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ

संस्कृत जैन वाङ्मय का आद्य ग्रन्थ 'तत्त्वार्थसूत्र'

- कु. रेखा जैन

(लेखिका शोध छात्रा हैं जो आचार्य उमास्वामी प्रणीत तत्त्वार्थसूत्र का समीक्षात्मक अनुशीलन विषय पर डॉ. शिवदर्शन तिवारी और डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' के निर्देशन में पी-एच. डी. उपाधि हेतु अपना शोध-प्रबन्ध तैयार कर रही हैं। प्रस्तुत लेख में उक्त ग्रन्थ का विशद परिचय उन्होंने दिया है। - सम्पादक)

भारतीय दर्शन में जैन तत्त्वज्ञान को सुव्यवस्थित एवं 'गागर में सागर' के समान सूत्र शैली में प्रस्तुत करने वाला **'तत्त्वार्थ सूत्र'** नामक ग्रन्थराज जैन शासन का महान् ग्रन्थ है। विद्वानों ने अनेक प्रमाणों तथा साक्ष्यों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि इसके रचयिता 'आचार्य गृद्धपिच्छ उमास्वामी' अब से लगभग २००० वर्ष पूर्व भारत भूमि को सुशोभित कर रहे थे। वह ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में हुए थे और युग-प्रधान आचार्य कुन्दकुन्द के साक्षात् शिष्य एवं अन्तेवासी थे। गृद्धपिच्छ उमास्वामी का उल्लेख 'उमास्वाति' के रूप में भी मिलता है। वे उस युग के मान्य दार्शनिक हैं जब जैन धर्म को साम्प्रदायिक वातावरण ने दूषित नहीं किया था। उनकी एकमात्र रचना **'तत्त्वार्थ सूत्र'** अपरनाम **'मोक्षशास्त्र'** है। यह पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ किसी सम्प्रदाय विशेष के सिद्धान्तों का उद्बोधक न होकर जैन शासन के सर्वमान्य सिद्धान्तों का निरूपक ग्रन्थ है। ग्रन्थ की उदात्तता, प्राचीनता तथा महनीयता से प्रेरित होकर ही जैन धर्म के दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों के आचार्यों ने इस पर अपने सिद्धान्तों की पुष्टि के लिये पाण्डित्यपूर्ण भाष्य, वृत्तियाँ, व्याख्याएँ और टीकाएँ लिखी हैं, परन्तु श्वेताम्बर विद्वानों की अपेक्षा दिगम्बर विद्वानों का कार्य इस विषय में विशेष श्लाघनीय है। **'तत्त्वार्थसूत्र'** के मान्य भाष्यों में आचार्य श्री पूज्यपाद देवनंदी की **'सर्वार्थसिद्धि'** (पञ्चम शताब्दी), आचार्य श्री भट्ट अकलंकदेव का **'राजवार्तिक'** (सप्तम-अष्टम शताब्दी) तथा आचार्य श्री विद्यानंद का **'श्लोकवार्तिक'** (नवम- दशम

शताब्दी) दिगम्बरी दृष्टि बिन्दु से लिखे गये हैं। श्वेताम्बरी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने वाली टीकाओं-वृत्तियों में आचार्य सिद्धसेन की **'वृहद्वृत्ति'** तथा आचार्य हरिभद्र की **'लघुवृत्ति'** प्रमुख हैं। यह तो निर्विवाद है कि व्याख्या सम्पत्ति की दृष्टि से **'तत्त्वार्थसूत्र'** अद्वितीय ग्रन्थ है।

जैन आचार्यों में उमास्वामी ही प्रथम संस्कृत लेखक हैं। उनके **'तत्त्वार्थसूत्र'** की प्राञ्जल, संक्षिप्त और शुद्ध शैली संस्कृत भाषा पर उनके प्रकाम प्रभुत्व की साक्षी है। उनके ग्रन्थ के प्रारंभिक पद्यों तथा अन्य पद्यों से स्पष्ट है कि वह गद्य की तरह पद्य के भी प्राञ्जल लेखक थे। इन सूत्रों की भाषा से यह सहज ही ध्वनित होता है कि उन्होंने पाणनीय व्याकरण का गहन गम्भीर अध्ययन किया था।

जैन आगम में प्रख्यात ज्ञान, ज्ञेय आदि से सम्बद्ध विषयों का वर्णन तो **'तत्त्वार्थ सूत्र'** में किया ही गया है, आधुनिक विषयों की दृष्टि से भी भूगोल, खगोल, आचार, अध्यात्म, द्रव्य, गुण, पर्याय, पदार्थ, सृष्टि-विद्या, कर्म, विज्ञान आदि विषय भी इसमें चर्चित हैं। इस ग्रन्थ के सूत्रों के सूक्ष्म अवलोकन से जैन आगम सम्बंधी उनके सर्वग्राही अध्ययन के अतिरिक्त वैशेषिक, न्याय, योग और बौद्ध आदि दार्शनिक साहित्य के अध्ययन की प्रतीति होती है। आगम के अन्य प्रतिपाद्य पक्षों का भी प्रतिपादन इस सूत्र ग्रन्थ में प्राप्त होता है। अतएव 'आचार्य उमास्वामी' श्रुतधर परम्परा के बहुज्ञ आचार्य हैं। उन्होंने दार्शनिक विषयों को सूत्र शैली में बड़ी स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया है। संस्कृत भाषा में सूत्र ग्रन्थ की रचना कर उन्होंने जैन परम्परा में नये युग का आरंभ किया है। यह ऐसे श्रुतधराचार्य हैं, जिन्होंने एक ओर नवोपलब्ध दृष्टि प्राप्त कर परम्परा से प्राप्त तथ्यों को युगानुरूप में प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर सांस्कृतिक और आगमिक व्यवस्था के दायित्व का निर्वाह भी भली-भाँति किया है। फलतः इनके पश्चात् संस्कृत भाषा में भी दार्शनिक, सैद्धान्तिक और काव्यादि ग्रन्थों का प्रणयन हुआ।

'तत्त्वार्थसूत्र' में जैन दर्शन के मूल तत्त्वों को अत्यन्त व्यवस्थित शैली में विश्लेषित किया गया है। इसमें करणानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग का सार समाहित है। जैन-दर्शन का सार ग्रन्थ होने से इसके मात्र पाठ या श्रवण का फल एक उपवास बताया गया है, जो उसके महत्त्व को सूचित करता है। वर्तमान में इस ग्रन्थ को जैन परम्परा में वही स्थान प्राप्त है जो वैदिक धर्म में **'श्रीमद्भगवद्गीता'** को, इस्लाम में **'कुरान'** को, और ईसाई धर्म में **'बाइबिल'** को प्राप्त है।

'तत्त्वार्थसूत्र' में दस अध्याय हैं। दिगम्बर परम्परा के अनुसार इसमें कुल ३५७ सूत्र हैं और श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार ३४४ सूत्र हैं। **तत्त्वार्थसूत्र** में सात तत्त्वों का वर्णन किया गया है। एक से चार अध्याय तक जीव तत्त्व का वर्णन है। पाँचवे अध्याय में अजीव तत्त्व का, छठे और सातवें अध्याय में आस्रव तत्त्व का, आठवें अध्याय में बंध तत्त्व का, नवमें अध्याय में संवर, निर्जरा तत्त्व का और दशवें अध्याय में मोक्ष तत्त्व का वर्णन है।

"पढम चउक्के, पढमं, पंचमए जाण पुग्गलं तच्च।
छह सत्तमे हि आस्सव, अट्ठमे बंध णायव्वो।।
णवमे संवर णिज्जर, दहमे मोक्खं वियाणे हि।
इह सत्त तच्च भणियं, दह सुत्ते मुणिवरिं देहिं।।"

तत्त्वार्थ सूत्र की विषयवस्तु :

इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में ३३ सूत्र हैं जिनमें रत्नत्रय, सात तत्त्वों को जानने के उपाय, सम्यग्ज्ञान, मिथ्याज्ञान और नयों का वर्णन है जिसकी विषयवस्तु इस प्रकार है- सूत्र १ से ८ तक मोक्ष प्राप्ति का उपाय, सम्यग्दर्शन का लक्षण, उत्पत्ति, भेद, सप्त तत्त्व, चार निक्षेप, सम्यग्दर्शन व तत्त्वों को जानने के उपायों का कथन प्रमाण-नय, निर्देश, स्वामित्व आदि और सत्, संख्यादि, अनुयोग द्वारों का कथन है। सूत्र ९-१२ तक सम्यग्ज्ञान के भेद व नाम। सूत्र १३-१९ तक मतिज्ञान के पर्यायवाची नाम, मतिज्ञान की उत्पत्ति के कारण, स्वरूप, मतिज्ञान के भेद, अवग्रह आदि व उनके विषय भूत पदार्थों का कथन ! तथा अर्थावग्रह, व्यञ्जनावग्रह का कथन। सूत्र २० में श्रुत ज्ञान की उत्पत्ति क्रम और भेद का कथन है। सूत्र २१-२२ में अवधिज्ञान, अवधिज्ञान के भेद व स्वामी का कथन है। सूत्र २३-२४ में मनः पर्यय ज्ञान व उसके भेद दर्शाये हैं। सूत्र २५ में अवधिज्ञान व मनःपर्यय ज्ञान में विशेषता का कथन है। सूत्र २६ में मति-श्रुतज्ञान का विषय वर्णित है। सूत्र २७-२८ में अवधिज्ञान और पर्ययज्ञान का विषय वर्णित है। सूत्र २९ में केवलज्ञान का विषय दर्शाया है। सूत्र ३० में एक साथ एक जीव के होने वाले ज्ञानों की संख्या का कथन है। सूत्र ३१ व ३२ में मति-श्रुत-अवधिज्ञान में विपरीतता और विपरीतता का हेतु दर्शाया है। सूत्र ३३ में नैगम आदि सात नयों का विवेचन है।

इस ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में जीवन के असाधारण भाव, जीव का वर्णन, विग्रहगति में जीव का वर्णन, जन्म और योनि का वर्णन, शरीर का वर्णन, लिंग का

वर्णन, जिनका अकाल मरण नहीं होता उन जीवों का वर्णन है। द्वितीय अध्याय में ५३ सूत्र हैं जिनकी विषयवस्तु इस प्रकार है- सूत्र १-७ में जीव के असाधारण भावों के नाम। भावों के उत्तरभेद व नामों का कथन है, सूत्र ८-१४ में जीव का लक्षण, उपयोग के भेद, जीव के भेद, संसारी जीवों के भेद, त्रस जीवों के भेद। सूत्र १५-२४ में इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के मूल भेद, द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय स्वरूप, पंचेन्द्रिय के नाम व इन्द्रियों के विषय, मन का विषय, इन्द्रियों के स्वामी व सैनी जीव का कथन। सूत्र २५-३० में विग्रहगति में योग, गमन कैसा, जीवों की गति, अविग्रहगति, विग्रहगति में आहारक- अनाहारक व्यवस्था का कथन। सूत्र ३१-३५ में जन्म के भेद, योनियों के भेद, गर्भ, उपपाद व.सम्मूर्छन जन्म के स्वामी का कथन है। सूत्र ३६-३९ में शरीरों के नाम, भेद। शरीरों की सूक्ष्मता, शरीर के प्रदेशों का कथन है। सूत्र ४०-४२ में तैजस और कार्मण शरीर की विशेषता का कथन है। सूत्र ४३ में एक जीव के एक साथ होने वाले शरीरों की संख्या वर्णित है। सूत्र ४४ में कार्मण शरीर की विशेषता। सूत्र ४५-४९ में औदारिक, वैक्रियिक, तैजस, आहारक शरीर के लक्षण स्वामी व विशेषता का कथन है। सूत्र ५०-५२ में तीन वेदों के स्वामी का कथन है तथा सूत्र ५३ में किन जीवों की अकालमृत्यु नहीं होती का वर्णन है।

तत्त्वार्थ सूत्र के तृतीय अध्याय में अधोलोक का वर्णन है। इस अध्याय में ३९ सूत्र हैं, जिनका वर्ण्य विषय इस प्रकार है- सूत्र १-६ में अधोलोक का वर्णन-सात पृथ्वियों (नरक) के नाम, नरक बिलों की संख्या, नारकियों के दुःख व नरकों में उत्कृष्ट आयु के प्रमाण का कथन। सूत्र ७ में मध्यलोक का वर्णन। सूत्र ७-८ में कुछ द्वीप समुद्रों के नाम, आकार व विस्तार और आकार कथन। सूत्र ९ में जम्बूदीप का विस्तार और आकार का कथन। सूत्र १० में सप्तक्षेत्रों के नाम। सूत्र ११-१४ में कुलाचलों के नाम, वर्ण, आकाश और कुलाचलों पर स्थित सरोवर के नाम। सूत्र १५-१७ में प्रथम सरोवर की लम्बाई, गहराई, कमल का कथन। सूत्र १८-१९ में महापद्म आदि सरोवरों में कमल, उनमें निवासिनी देवियों का कथन। सूत्र २०-२३ में १४ महानदियों के नाम, बहने का क्रम व सहायक नदियों की संख्या का कथन। सूत्र २४-२६ में भरतादि क्षेत्रों का विस्तार! सूत्र २७ में कालचक्र परिवर्तन। सूत्र २८ में अन्य भूमियों का विस्तार। सूत्र २९-३१ में हैमवत आदि, हैरण्यवत आदि और विदेह क्षेत्रों में आयु की व्यवस्था। सूत्र ३२ में भरत क्षेत्रों का अन्य प्रकार से विस्तार। सूत्र ३३ में धातकी खण्ड वर्णन। सूत्र ३४ में पुष्कर द्वीप का वर्णन। सूत्र

३५-३६ में मनुष्य क्षेत्र, मनुष्यों के भेद, कर्मभूमि का वर्णन व मनुष्यों की उत्कृष्ट जघन्य स्थिति का कथन। सूत्र ३६ में तिर्यंचों की स्थिति का वर्णन है।

तत्त्वार्थ सूत्र के चतुर्थ अध्याय में कुल ४२ सूत्र हैं जिनमें चतुर्निकाय देवों का वर्णन किया गया है जिनकी विषयवस्तु इस प्रकार है- सूत्र १-६ में देवों के भेद, भवनत्रिक देवों में लेश्या, चार निकायों के प्रभेद, चार प्रकार के देवों के सामान्य भेद व देवों में इन्द्र व्यवस्था का कथन। सूत्र ७-६ में देवों में स्त्री सुख का वर्णन। सूत्र १०-१२ में भवनत्रिक देवों के १०-८-४ भेदों का कथन। सूत्र १३-१५ में ज्योतिष्क देवों का विशेष कथन। सूत्र १६-२३ में वैमानिक देव, उनके भेद, कल्पों में स्थिति क्रम, वैमानिक के निवास स्थान, उनसे उत्तरोत्तर हीनता व अधिकता, लेश्या तथा कल्प संज्ञा का कथन। सूत्र २४-२५ में लौकान्तिक देव व उनके नाम का कथन। सूत्र २६ में विजयादि विमान के देवों के संसार में रहने के काल का कथन। सूत्र २७ में तिर्यंच कौन ?, सूत्र २८-३२ में भवनवासी व वैमानिक देवों की उत्कृष्ट आयु का कथन। सूत्र ३३-३८ में स्वर्गों व नरकों का तथा प्रथम नरक, भवनवासी व व्यन्तर देवों की जघन्य आयु का कथन। सूत्र ३६-४० में व्यन्तर और ज्योतिषी देवों की उत्कृष्ट आयु का कथन। सूत्र ४१ में ज्योतिष्क देवों की जघन्य आंयु का कथन। सूत्र ४२ में लौकान्तिक देवों की आयु का कथन है।

तत्त्वार्थ सूत्र के पंचम अध्याय में अजीव तथा बहुप्रदेशी द्रव्य का वर्णन है। इस अध्याय में ४२ सूत्र हैं जिनकी विषय-वस्तु इस प्रकार है- सूत्र १-३ में अजीव द्रव्य, द्रव्यों की गणना का कथन। सूत्र ४-७ में द्रव्यों की विशेषता, द्रव्यों के स्वभेद की गणना व निष्क्रिय द्रव्यों का कथन। सूत्र ८-१६ में द्रव्यों के रहने का स्थान। सूत्र १७-२२ में धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव का काल द्रव्य का उपकार कथन। सूत्र २३-२५ में पुद्गल द्रव्य का लक्षण, पर्याय, भेद कथन। सूत्र २६-२८ में स्कंध व अणु की उत्पत्ति के कारण का कथन। सूत्र २६-३२ में द्रव्य, सत् व नित्य के लक्षण कथन। सूत्र ३३-३५ में परमाणुओं के बन्ध में हेतु का कथन। सूत्र ३६-३७ में 'बंध किसका' ?, सूत्र ३८-३६ में द्रव्य का लक्षण व काल को भी द्रव्य मानना। सूत्र ४० में काल द्रव्य की विशेषता। सूत्र ४१-४२ में गुण व पर्याय का लक्षण बताया गया है।

तत्त्वार्थ सूत्र के षष्ठ अध्याय में आस्रव तत्त्व का स्वरूप उसके भेद-प्रभेद और किन-किन कार्यों के करने से किस-किस कर्म का आस्रव होता है उसका विस्तृत

वर्णन किया गया है जिसकी विषयवस्तु इस प्रकार है- सूत्र १ में योग के भेद व स्वरूप कथन। सूत्र २-६ में आस्रव स्वरूप, योग निमित्तक आस्रव के भेद, स्वामी अपेक्षा भेद, आस्रव की विशेषता में कारण रूप भाव का कथन। सूत्र ७-६ में अधिकरण के भेद। सूत्र १० में ज्ञानावरण दर्शनावरण के आस्रव रूप परिणाम का कथन। सूत्र ११-१२ में असाता व सातावेदनीय के आस्रव रूप परिणामों का कथन। सूत्र १३-१४ में दर्शन-मोहनीय व चरित्र मोहनीय के आस्रव रूप परिणामों का कथन। सूत्र १५-२१ में चारों आयु के आस्रव रूप परिणामों का कथन। सूत्र २२-२४ में अशुभ व शुभ नामकर्म के आस्रव रूप परिणामों का कथन। सूत्र २५-२६ में नीच गोत्र व उच्च गोत्र कर्म के आस्रव। सूत्र २७ में अन्तराय कर्म के आस्रव रूप परिणामों का कथन है।

तत्त्वार्थ सूत्र के सप्तम अध्याय में व्रत का स्वरूप, उसके भेद, व्रतों की रक्षा करने वाली भावनाएँ, हिंसादि पाँच पापों का स्वरूप, सप्तशील, सल्लेखना, प्रत्येक व्रत और शील के अतिचार, दान का स्वरूप एवं दान के फल में तारतम्य होने के कारण का विश्लेषण ३६ सूत्रों में इस प्रकार से किया गया है-सूत्र १-८ में व्रत का लक्षण, व्रत के भेद, व्रतों की स्थिरता के कारण, पाँच व्रतों की पाँच-पाँच भावनाओं का विवेचन। सूत्र ६-१० में हिंसादि पापों के विषय में करने योग्य विचार कथन। सूत्र ११-१२ में निरन्तर चिन्तन करने योग्य चार भावनाएँ व संसार तथा शरीर के स्वभाव का कथन। सूत्र १३-१७ में हिंसादि पापों के लक्षण। सूत्र १८-२१ में व्रतों की विशेषता, व्रतों के भेद व अगारी का लक्षण तथा सप्तशील का कथन। सूत्र २२-३७ में व्रती का कर्त्तव्य सल्लेखना धारण करें तथा सम्यक्त्व, पाँच व्रत व सात शीलों के और सल्लेखना के अतिचारों का कथन। सूत्र ३८-३६ में दान का लक्षण। दान में विशेषता का कथन है।

तत्त्वार्थ सूत्र के अष्टम अध्याय में कर्म बन्ध के मूल हेतु समझाकर उसके स्वरूप तथा भेदों का विस्तारपूर्वक कथन करते हुये आठों कर्मों के नाम, प्रत्येक कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ, प्रत्येक कर्म के स्थिति बंध, अनुभागबंध और प्रदेश बंध का स्वरूप २६ सूत्रों में इस प्रकार से बतलाया है- सूत्र १-३ में बंध हेतु, बंध लक्षण, बंध भेद। सूत्र ४-५ में प्रकृति बंध के मूल व उत्तर भेद। सूत्र ६-१३ में अष्ट कर्मों के उत्तर भेद। सूत्र १४-२० में अष्ट कर्मों की उत्कृष्ट व जघन्य स्थिति। सूत्र २१-२३ में अनुभाग बंध विवेचन। सूत्र २४ में प्रदेश बंध स्वरूप कथन। सूत्र २५-२६ में पुण्य पाप प्रकृतियों का कथन है।

तत्त्वार्थसूत्र के नवम् अध्याय में संवर तथा निर्जरा तत्त्वों का वर्णन किया गया है। इसमें दस धर्म, बाईस परीषह, चारित्र के भेद आदि बताये गये हैं जिसकी विषयवस्तु इस प्रकार से है- सूत्र १-२ में संवर का लक्षण व संवर के हेतु। सूत्र ३ में संवर-निर्जरा के हेतु। सूत्र ४-७ में गुप्ति, समिति, धर्म व अनुप्रेक्षा कथन। सूत्र ८-१७ में परीषह कथन। सूत्र १८ में पाँच प्रकार के चारित्र का कथन। सूत्र १६-२६ में बाह्याभ्यन्तर तप व तप के उत्तर भेदों का कथन। सूत्र २७-२६ में ध्यान का लक्षण, भेद, परम्परा व साक्षात् मोक्ष के हेतु ध्यानों का कथन। सूत्र ३०-३४ में आर्त्त ध्यान का लक्षण, भेद, स्वामी। सूत्र ३५ में रौद्र ध्यान के भेद व स्वामी। सूत्र ३६ में धर्मध्यान के भेद। सूत्र ३७-४२ में शुक्ल ध्यान के स्वामी, भेद, आलम्बन, विशेषता। सूत्र ४३-४४ में- वितर्क और विचार लक्षण। सूत्र ४५ में- निर्जरा के न्यूनाधिक स्थान। सूत्र ४६ में निर्ग्रंथ साधुओं के भेद। सूत्र ४७ में निर्ग्रन्थ साधुओं में विशेषता का कथन है।

तत्त्वार्थसूत्र के दशम् अध्याय में केवलज्ञान के हेतु, मोक्ष का स्वरूप, मुक्ति पश्चात् जीव के उर्ध्वगमन का दृष्टान्तपूर्वक सयुक्तिक समर्थन तथा मुक्त जीवों का वर्णन इस प्रकार किया गया है- सूत्र १-२ में केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण, मोक्ष का हेतु और लक्षण। सूत्र ३ में मोक्ष में किसका अभाव होता है। सूत्र ४ में मोक्ष में कितने भावों का सद्भाव है। सूत्र ५ में कर्म क्षय के बाद जीव की स्थिति। सूत्र ६-७ में मुक्त जीव के उर्ध्वगमन में कारण व दृष्टान्त। सूत्र ८ में लोकाग्र के आगे जीव के गमन का अभाव क्यों ? सूत्र ६ में मुक्त जीवों में भेद होने के कारण का वर्णन है।

इस प्रकार **'तत्त्वार्थसूत्र'** जैन वाङ्मय का संस्कृत भाषा में उपनिबद्ध आद्य ग्रन्थ है। सूत्र शैली में रचित इस ग्रन्थ का दाय उत्तरवर्ती अनेक आचार्यों, मनीषियों और रचनाकारों पर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। भाषा की प्रौढि, कोमलकान्त पदावली-युक्त नाद सौन्दर्यमय प्राञ्जल और परिष्कृत शैली, भावगाम्भीर्य और हित-मित-प्रिय विवेचना सर्वातिशायिनी अभिराम प्रतिभा का निदर्शन कराने में पूर्णतः सक्षम है।

- मनीष किराना स्टोर्स
स्टेशन रोड, दमोह- ४७०६६१

बेचारा सर्वज्ञ वाक्य का विश्वासी

– महात्मा भगवानदीन

(१९वीं शताब्दि के अन्तिम चरण में तथा २०वीं के प्रथम चरण में जैन समाज में नवचेतना की एक अद्‌भुत लहर उठी थी जिसने परम्परागत अन्ध श्रद्धा एवं रुढ़ियों से ग्रस्त सुसुप्त जैन समाज को झकझोर दिया था। इसके संवाहक कतिपय ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेकर तथा अत्यन्त सादगी पूर्ण जीवन शैली अपनाते हुए अपना सम्पूर्ण जीवन धर्म, समाज व देश की निस्वार्थ सेवा के लिए अर्पित कर दिया था। जैन जागरण के इन अग्रदूतों में एक प्रमुख नाम महात्मा भगवानदीन का है। महात्मा जी ने बच्चों में धार्मिक-नैतिक एवं लौकिक शिक्षा के समुचित समीकरण से आदर्श भावी नागरिक निर्माण करने के उद्‌देश्य से हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र पर ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम गुरुकुल की स्थापना कराई तथा सन् १९११ से १९१८ तक स्वयं उसके प्रथम अवैतनिक अधिष्ठाता रहे। महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेते हुए उन्होंने सन् १९१८ से १९३४ तक कई बार जेलयात्रा भी की। वे एक गंभीर चिंतक एवं प्रबुद्ध लेखक थे। उनकी एक पुस्तक "सत्य और जीवन" का शीघ्र ही पुनर्प्रकाशन हो रहा है। उक्त पुस्तक का यह अंश हमें बंधुवर जमनालाल जैन, सारनाथ के सौजन्य से प्राप्त हुआ है। जिसे हम पाठकों के लाभार्थ प्रकाशित कर रहे हैं। शास्त्रों में लिखा सभी कुछ सर्वज्ञ प्रणीत मान लेने के लिए इसमें विद्वानों को झकझोरा गया है। – सम्पादक।)

सर्वज्ञवाक्य सब ठीक होते हैं और जो धर्म-ग्रन्थों में लिखा है, वह सब सर्वज्ञ-वाक्य हैं-इस बात ने एक ऐसी अनोखी स्थिति पैदा कर दी है, जिस पर हंसी आती है। मान लीजिये एक आदमी अपने शादी शुदा पुत्र को, जो मुद्‌दत से घर आने की नहीं सोच रहा, नाराज होकर यह लिखता है कि तुम बहुत नालायक हो कि इतने दिन हो गये और घर पर नहीं आते। तुम्हारे न आने से तुम्हारी पत्नी विधवा हो गयी। वह पुत्र अपनी पत्नी के विधवा होने की खबर पढ़कर रोने लगता है। उसके मित्र जब उससे पूछते हैं कि वह क्यों रोता है, तब वह बताता है कि उसकी पत्नी विधवा हो गयी। उसके दोस्त उसे समझाते हैं कि उसके जीते-जी उसकी पत्नी कैसे विधवा हो सकती है? यह सुनकर वह जवाब देता है कि 'हां', वह तो मैं भी जानता

हूं कि मेरे जीते-जी मेरी पत्नी विधवा नहीं हो सकती। पर मेरे पिता जो हमेशा सच बोलते हैं वे वहां मौजूद हैं जहां मेरी पत्नी है । उनके हाथ की लिखावट मैं खूब अच्छी तरह पहचानता हूं और इस चिट्ठी पर मोहर भी उसी नगर की है, जहां पिताजी रहते हैं। फिर उसी चिट्ठी में लिखा है कि मेरी पत्नी विधवा हो गयी, तब मैं इसे झूठ कैसे मान सकता हूं? मेरे पास इसके सिवा क्या चारा है कि मैं यह कहूं कि चूंकि आप अकल की बात कह रहे हैं, ऐसी बात कह रहे हैं जो मेरी समझ में और बुद्धि में आती है, इसलिए आप उतने ही सही हैं, जितने मेरे पिताजी की लिखी चिट्ठी के शब्द। आपकी बात बुद्धि-प्रमाण इसलिए ठीक, और मेरी बात पिताजी की चिट्ठी आगम-प्रमाण इसलिए ठीक। मेरे पिता चाहे सर्वज्ञ न हों, पर जो बात लिख रहे हैं उसके वे हर तरह से पूरे जानकार हैं और इस प्रकार सर्वज्ञ हैं।'

ऊपर की बात पढ़कर पढ़ने वालों को जरूर हंसी आयेगी। पर हम दृष्टान्त देकर नहीं रह जायेंगे। हमने इस प्रकार का प्रसंग अपनी आंखों-देखा है। हम यहां नाम नहीं देना चाहते। एक बड़े मशहूर बैरिस्टर थे। उन्होंने अपने धर्म ग्रंथों का बहुत अच्छा अध्ययन किया था और उनका सार लेकर अंग्रेजी में एक खासी मोटी पुस्तक भी लिखी थी। उनके धर्म के अनुसार जमीन चपटी है, उसके चारों ओर उनके चन्द्र-सूर्य घूम रहे हैं, अनगिनत दुनियाएं हैं, पर हमारी इस जानी हुई दुनिया के दो सूरज और दो चन्द्रमा हैं। वे बैरिस्टर साहब इस बात के ऐसे ही विश्वासी थे जैसे ऊपर वाला जवान अपने पिता की बात का। क्योंकि वे अपने धर्म-ग्रंथों को सर्वज्ञ का कहा समझते थे। एक दिन एक व्यक्ति दो सूरज के बारे में उनसे बहस कर बैठा। उसने उनसे कहा, 'इस बात में तर्कशास्त्र की कहां जरूरत है, आप नार्वे देश के ओस्लो नगर में चलिये, मैं आपको २४ घंटे नहीं, २४ दिनों तक एक ही सूरज दिखा सकता हूं, फिर दो सूरज कहां से आ गये ? अगर कोई दूसरा सूरज है तो वह किधर रास्ता काटकर निकल जाता है? यदि आप सर्वज्ञ की बात सिद्ध करने के लिए यह भी कह दें कि वह रास्ता काटकर निकल जाता है, तो फिर आपको इस सवाल का जवाब देना होगा कि दूसरे दिन अंधेरा क्यों नहीं रहता? क्योंकि आपका धर्मशास्त्र यह कहता है कि एक दिन एक सूर्य आता है और दूसरे दिन दूसरा।'

उसकी यह दलील अकाट्य थी, पर बैरिस्टर साहब उसे कैसे मान लेते। ऐसा मानने से उनके धर्मग्रंथों को बट्टा लगता, उनकी धर्म की सारी बुनियाद ढह जाती। शायद सबसे बुरी बात यह होती कि जिन श्रद्धालु सेठों ने उन्हें पंडित मान रखा था,

उनकी नज़र में वे पंडित न रह जाते। अतः उन्होंने उस व्यक्ति से यही कहा कि 'हम ऐसा नहीं मानते, जब तक कि खुद वहां जाकर यह न देखें' बस, उनके भक्त सेठ उछल पड़े और तुरन्त उनके ओस्लो जाने का प्रबंध कर दिया गया। वे वहां गये और अपनी आंखों से एक ही सूरज को २४ घंटे देख आये।

ओस्लो के सूरज की बात स्कूल का बच्चा-बच्चा जानता है। वे स्वयं भी जानते थे, पर सीधे-सीधे मान लेने से ओस्लो की सैर कैसे होती ? फिर ओस्लों में २४ घंटे सूरज देखकर और वहां से लौटकर उन्होंने कहा क्या ? वही, जो उस जवान ने कहा था कि 'ओस्लों का एक सूरज इसलिए ठीक कि वह हमने आंखों देखा और धर्म-ग्रन्थ के दो सूरज इसलिए ठीक कि वह सर्वज्ञ ने अपनी आंखों देखे'। बस ग्रन्थों को सर्वज्ञ वाक्य मानने से समाज में इस तरह के लोगों के पैदा हो जाने का बहुत बड़ा ख़तरा बना रहता है।

समाज को हानि तो तभी पहुंचती है, जब धर्म ग्रंथों को बुद्धि और तर्क से बड़ा मानकर सहारा लिया जाता है। प्रचलित धर्म और सत्य में यही अन्तर है कि धर्म आज की तारीख तक की बात नहीं कहता और सत्य आज तक की बात कहता है। इसलिए धर्म को सत्य और परीक्षा की कसौटी पर कसे जाने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए।

यह प्रसंग बै. चम्पतराय जी का है।

मानव का क्या अर्थ रहा

वह जीवन क्या जो जीवन में, कुछ काम किसी के आ न सका।
वह हृदय अरे वह हृदय नहीं, जो दुःखियों को अपना न सका।
वह मानव ही क्या अपना ही, बस पेट पालना जान सका।
जो मानव मन की पीड़ा को भी, न कभी पहचान सका।
जो केवल अपने हेतु जिया, उसका जीवन ही व्यर्थ रहा।
मानव में मानवता न हुई, तो मानव का क्या अर्थ रहा।

- शांतिलाल जैन बैनाड़ा

बी-१/२०६, प्रोफेसर कॉलोनी, हरी पर्वत, आगरा-२८२००२

निर्ग्रंथ मेरे गुरु

- श्री उदयमुनि जी म.

निर्ग्रंथ गुरु के सच्चे स्वरूप को जानने और मानने से व्यवहार सम्यकत्व होता है। निर्ग्रंथ अर्थात् ग्रंथि से मुक्त। कौन सी ग्रंथियां? राग द्वेषादि ग्रंथियों का छेदन कर देने वाले निर्ग्रंथ गुरु ही गुरु होते हैं। भगवान महावीर को तथा उनके शिष्यों को 'निगंठ' ही कहा जाता था। जैन तो बाद में प्रचलित हुआ। बौद्ध ग्रंथों में भी यही शब्द आया है। वैर-विरोध की गांठे, कर्म की गांठें तोड़ देने वाले ही निर्ग्रंथ होते हैं। ग्रंथि-भेद शब्द भी आता है। आत्मा के साथ कर्म की ग्रंथि, गांठें बंधी हुई है, उनके भेदन करने वाले, छेदने वाले ही निर्ग्रंथ कहे जाते हैं।

मुख्यतः राग द्वेष अज्ञान को कर्म ग्रंथि कहा जाता है। साधक प्रथमतः अनन्तानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ, **मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, सम्यक्त्व** मोहनीय ऐसी सात कर्म प्रकृतियों का क्षय या उपशम या क्षयोपशम करता है, फिर अप्रत्याख्यानावरणी क्रोध- मान-माया-लोभ का क्षयादि करता है। ऐसी तीन चोकड़ी कषाय के अभाव रूप उत्कृष्ट वीतरागदशा को प्राप्त निर्ग्रंथ वीतरागी मुनि गुरु होता है।

ऐसा मुनि (साधु, साध्वी) उस सज्ज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ को भी नष्ट करने के लिए बाह्यांभ्यंतर परिग्रह से मुक्त होता है। खेत बन्ध, हिरण्य-सुवर्ण, धन-धान्य, दुपद-चौपद आदि बाह्य परिग्रह से पूर्णतः मुक्त रहता है और हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद ऐसे नोकषाय को हेय मानता है।

नोकषाय और सज्ज्वलन कषाय को नष्ट करने के लिए पांच महाव्रत धारणकर उनका निरतिचार पालन करता है। अतिचार-दोष लगे तो प्रतिक्रमण प्रायश्चित द्वारा निवारण करता है। पांच समितियों और तीन गुप्तियों का पालन करता है। २२ परीषह जीतता है। १२ घंटे स्वाध्याय, ६ घंटे ध्यान, ३ घंटे की निद्रा और तीन घंटे आहार-विहार-निहार में लगाता है। एक समय ही आहार लेता है। १२ प्रकार के तप करके निरंतर कर्मों की निर्जरा करता है। प्रमाद को छोड़कर, एक समय भी प्रमाद को न चाहते हुए निरंतर अप्रमत्त-अप्रमत्त, स्वस्थ्य-आत्मस्थ होता है। इष्टानिष्ट, अनुकूलता-प्रतिकूलता से परे होकर, आर्तध्यान को छोड़ता हुआ धर्मध्यान में, आत्मा में, आत्मसमाधि में लीन होता है, वह सद्गुरु, सुसाधु कहलाता है।

ऐसा साधु पंचाचार का पालन करता है। नौ बाढ सहित ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ ब्रह्मस्वरूपी आत्मा में ही उसकी चर्या होती है।

विषय भाव से परे होकर समभाव में आता है। लाभ हो या अलाभ, सुख हो या दुख, जीवित रहे या मरण आए, निंदा हो या स्तुति हो, मान हो या अपमान हो, हर स्थिति में समभाव, समताभाव रखता है, सहनशील होता है। नरेन्द्र या देवेन्द्र वन्दन करें तो भी उसे लेशमात्र राग नहीं होता है और धीरे-धीरे परीषह देने वाले के प्रति भी उसे नाम मात्र भी दोष-वैर विरोध-क्रोध भाव नहीं होता है। निरंतर आत्मानंद में, परम आनंद में लीन, अनुपम क्षमावंत होता है।

ऐसा साधु निरंतर आत्मसाधना-धर्मसाधना-धर्मध्यान में लीन रहता है। बाह्य लब्धियों-उपलब्धियों से परे होता है। उत्कृष्ट-उत्कट आत्म साधना के बल से बाह्य लब्धियां प्राप्त/प्रकट हो सकती हैं परन्तु उन्हें प्रकट नहीं करता, उनका उपयोग नहीं करता है। **यदि लब्धि फोड़े तो साधुता से गिर जाता है।** मात्र तीर्थ के, संघ के रक्षार्थ उस लब्धि का अति विकट स्थिति को टालने हेतु कभी उपयोग करना पड़े तो करे परन्तु उसका प्रायश्चित लेना पड़ता है। **जंतर-मंतर, टोने-टोटके नहीं करता।** यदि इंद्रिय विषयों की पूर्ति में, सुख सुविधार्थ, यशोकीर्ति के लोभ में किंचित भी इनका आश्रय ले तो साधुता टिकती ही नहीं है। कंचन कामिनी से तो वह कोसों दूर रहता है। इनकी तथा पांच इंद्रिय विषयों की आसक्ति तो स्वप्न में भी चाह नहीं करता है।

आसनजय, आहारजय, निद्राजय, नियमित वाचा, नियमित काया और स्थान विशुद्धि के माध्यम से वह साधु इंद्रियों का निग्रह करता है, मन को नियंत्रित करता है। मुनि तो मौन होता है। आत्मा में जागता और बाहर में सोता है। उपयोग को निरंतर अंदर ले जाना चाहता है। ज्ञान उसे निरंतर सजग कर आत्मवृत्ति में ले जाता है।

लोक के समस्त जीवों, त्रस या स्थावर जीवों को आत्मवत समझता है। उसका कोई शत्रु या मित्र भी नहीं होता। लोक के समस्त प्राणियों से उसकी मैत्री होती है-मात्र मैत्री की सुवास होती है। न शत्रु न मित्र, मात्र मैत्री। उसके आश्रय में प्राणिमात्र को शांति, सुख और आनंद की प्राप्ति होती है। जो मुमुक्षु आत्मा ऐसे सद्गुरु को तन से, मन से, धन से, सर्वस्व अर्पण करे उसे सत्स्वरूप, आत्म स्वरूप प्राप्त हो जाता है। ऐसे सद्गुरु पापों को गलाने वाले मंगलरूप होते हैं, इसलिए लोक में ये ही उत्तमोत्तम उत्कृष्ट-परम इष्ट होते हैं और इसी कारण उनकी शरण से कर्म कलंक मिटकर आत्मा उज्ज्वल-धवल मुक्त हो जाती है।

मुमुक्षु जीव ऐसे ही सद्गुरु (निर्ग्रंथ) को गुरु माने। एक सद्गुरु को मानने से पंचपरमेष्ठि को मानना हो जाता है। क्योंकि अरिहंत तीर्थंकर परमात्मा परम सद्गुरु होते हैं जो ज्ञान- दर्शन-चारित्र रूप मोक्ष मार्ग का प्ररुपण कर सर्वकर्मों के क्षय, जन्म-जरा-मृत्यु के भय से मुक्त करते हैं। वे अघातिया कर्मों के नष्ट होने पर .सिद्ध परमात्मा हो जाते हैं। उन तीर्थंकर परमात्मा की आज्ञा में विचरण करने वाला आचार्य-उपाध्याय-साधु साध्वी, तीनों भी सद्गुरु की परिभाषा में आ जाते हैं।

सद्गुरु गुणरूप होते हैं, भावरूप होते हैं। वीतराग-स्वभावी-शुद्ध आत्मस्वरूपी होते हैं। इनके नामस्मरण, चिंतन-स्तुति से उन स्वरूप हुआ जाता है। आचार्य के ३६, उपाध्याय के २५ और मुनि के २८ गुण होते हैं। ये गुण आत्मा के गुण हैं। भावलिंग मुख्य है। द्रव्यलिंग, बाह्य वेष गौण है।

बाह्य वेष मात्र पहचान के लिए है। वह वेष उस वेषधारी साधक को सजग करके आभ्यांतर में ले जाने में, आत्मा का उपयोग आत्माकार करने में, आत्मवृत्ति में सहायक या निमित्त मात्र है। बाह्य वेष के आधार पर अप-नीच की भावना, मत-मतान्तर के आग्रह-वैर वैमनस्य आत्मगुणों के लिए हानिकारी है।

जाग रे तू

(१)

मानव शरीर जो मिला है भाग्य ही से तुझे, जाने कितने ही पुण्य कर्म की कमाई है।
सुन्दर स्वरूपवान देह दशद्वारावती, ऐसी उपलब्धि है कि तुझको बधाई है।
किन्तु, एकमात्र आत्मज्ञान के अभाव ही से ही धूल-धूसरित सब तेरी प्रभुताई है।
सुधा का हलाहल का भेद भी न पाया जान, कुन्द बुद्धि तेरी काम तेरे ही न आई है।

(२)

भव-वैभव तो क्षण भंगुर है, निज चित्त की भ्रान्तियां त्याग रे तू!
यह रूप औ यौवन नश्वर है, मत इन्द्रियों में अनुराग रे तू!
विषयों में प्रसक्त न लोलुप हो, रस में मन को नहीं पाग रे तू!
दुख झेल न आग लगा जग में, मन मूरख! जाग रे! जाग रे तू!!

– डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, सीतापुर

हमारी दुर्दशा और हीनता का कारण

-डॉ. विमल प्रकाश जैन

'शोधादर्श' के मार्च अंक (क्रमांक ४६) में उपर्युक्त शीर्षक से श्री सुखमाल चंद जैन का विचारपूर्ण लघु लेख तथा इससे पूर्व के अंक ४८ में श्री जमनालाल जी का लेख अत्यन्त विचारोत्तेजक हैं।

श्री सुखमालचंद लिखते हैं- "भूतकाल में हम भारतवासियों को जो विभिन्न विदेशी आक्रमणकारियों से पराजय का सामना करना पड़ा, उसका मुख्य कारण उनकी युद्धकला में श्रेष्ठता, अत्यधिक निर्दयता व अनैतिकता का प्रयोग था न कि हमारी अहिंसावादी प्रवृत्ति।" किसी भी शत्रु के समक्ष जब देश, समाज पर संकट आया हो, उससे, प्राण रहते तक पराजय स्वीकार कर लेना, किसी भी प्रकार अहिंसावादी प्रवृति का द्योतक नहीं है। वह तो कायरता का एक निंदनीय उदाहरण है। भारत का इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है। हुआ यह है कि प्रत्येक समय में थोड़ी सी राजसेनाओं एवं सैनिकों को छोड़कर जनता का बहुभाग राज्य-रक्षा की दृष्टि से राज्यसेना में सम्मिलित नहीं था। अतः किसी शत्रु सैन्य के आक्रमण, अनाक्रमण से वह असंपृक्त और उदासीन था। देश पर बारम्बार बाह्य आक्रमणकारियों के हमले होते रहे, और हमारे नीतिमन्तों, राजाओं व सेनापतियों ने पिछले युद्धों से शत्रु सैन्य की रचना व युद्धनीति से कभी कुछ नहीं सीखा और एक ही प्रकार की युद्धनीति जो अनेक बार पराजय का कारण बन चुकी थी, उसी का अनुगमन करते हुए पराजित होते रहे। देशी राजाओं की सेनाओं में हस्ती सेनायें प्रमुख मानी जाती थीं। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब हस्ति सेना में शत्रु के प्रचण्ड आक्रमण के कारण, भगदड़ मचने पर, हस्ति सेना के द्वारा अपनी ही पदाति सेनाओं का संहार होता था। सिकन्दर व पोरस के युद्ध से लेकर, मोहम्मद गौरी और पृथ्वीराज चौहान के १७ बार के युद्धों में अन्ततः हस्ति सेना ही देशज वीरों के विनाश का कारण बनी। युद्धों के इतिहास में जाने का समय नहीं है। तथापि मैं यह अवश्य कहना चाहूंगा कि इस देश के ५०० से अधिक स्वयंभूराजा अपनी-अपनी राज्य सीमाओं को ही अपने देश की अंतिम सीमा मानकर, शेष भारतीय राजाओं से युद्ध और कथित शत्रु-देश के सैन्यबल, जनबल, कृषिबल और व्यापार बल के विनाश में ही लगे रहे। सबसे अधिक करुण और क्षोभजनक घटना गुरु गोविन्द सिंह के औरंगजेब से युद्ध और अंत में चारों बेटों

तथा दक्षिण देश में गोदावरी के तट पर स्वयं की हत्या होने की है। स्व. गुरु गोविन्द सिंह ने मुगल सेनाओं के साथ युद्ध की अनिवार्यता जानकर, उनके समय में देश के ५५० से अधिक रियासतों के राजाओं को एक पत्र लिखा था। वह पत्र सिक्ख जाति के विगत ३५० वर्षों के इतिहास में सुरक्षित है और प्रत्येक देश-प्रेमी व इतिहास जिज्ञासु के लिए अवश्य पठनीय है। उसके संक्षेप स्वरूप गुरु गोविन्द सिंह ने देश के सभी तत्कालीन रियासती राजाओं से विनम्र अनुरोध किया था- कि वे देश, धर्म और जाति के आततायी, निर्मम व क्रूर शत्रु, मुग़ल सम्राट की सेनाओं से लड़ने और उनको सदाकाल के लिए राज्यसत्ता से पदच्युत करने में उनकी सहायता करें; कि उन्हें आपमें से किसी की रियासत की एक इंच भूमि अथवा किसी अन्य संपत्ति को हड़पने/बटोरने की कोई लालसा नहीं है। वे किसी का राज्य छीनना नहीं चाहते, वे किसी के शत्रु नहीं हैं, और शत्रु तो वे मुग़ल सम्राट व मुग़लों के भी नहीं हैं, उनका युद्ध तो उसके द्वारा धर्म और जाति के विनाश एवं संहार को रोकने के लिए है। उन्होंने सर्वप्रकार से प्रत्येक हिन्दूराजा को यह आश्वासन दिया कि उन्हें उन में से किसी का कुछ नहीं चाहिए। परन्तु सत्ता के लोभी, कायर व परस्पर प्रतिद्वेषी उन राजाओं में से किसी ने भी उनकी कोई सहायता नहीं की। उनके दो पुत्र युद्ध भूमि में बलिदान हो गये, दो जीते-जी दीवारों में चिनवा दिए गए और अंततः वे भी स्नान करने के लिए गये तो गोदावरी के तट पर अकेले मार डाले गए।

इस देश के राजाओं की वीरता की कहानियां तो अनेक हैं, परन्तु उन्होंने अन्य रिसायतों की जनता और राजाओं के साथ कैसा व्यवहार किया, उसका ख्याल किसी को नहीं आता। अधिकांश राजा देश की सुंदरतम राजकुमारियों को प्राप्त करने की लालसा में युद्धरत रहते और मृत्यु को प्राप्त होते थे। उनके मानस में जन हित का व समग्र देश का कोई चित्र नहीं था। ध्यातव्य है कि हिन्दुस्तान के पुराने राजा बाह्य शत्रुओं से नहीं, अपितु देश के ही भिन्न-भिन्न भागों के स्वाधीन राजाओं तथा उनके क्षेत्र की जनता अर्थात् अपने ही देश से द्रोह व शत्रुता करते रहे और इसी में देशी राजाओं का समग्र जीवन नष्ट हो गया और उनके साथ देश के सांस्कृतिक, साहित्यिक, व्यापारिक विकास की गति भी बारंबार अवरुद्ध होती रही।

इस देश की आजादी की कहानी जितनी करुणास्पद है, उससे कहीं अधिक क्रूर है, और हमारे देशवासियों में हिंसा कितनी गहराई तक जड़ जमाकर बैठ गई है उसका उदाहरण है। कोई भी जाति जब आत्म रक्षार्थ युद्ध नहीं करती और अपने

सर्वस्व बलिदान के लिए प्रस्तुत नहीं होती, वह जाति, धर्म और संस्कृति विनाश को प्राप्त हुए बिना नहीं रहती।

इस कथन से बड़ा कोई अपलाप नहीं हो सकता कि देश ने अहिंसा के बल पर स्वाधीनता प्राप्त की। स्वाधीनता से पूर्व की अनेक अमानवीय घटनायें और स्वाधीनता के पश्चात्, इन ५५ वर्षों का इतिहास हमारी अहिंसा का एक क्रूर मजाक है। कहां है अहिंसा। और अहिंसा के पक्षधर ! कोई जाति, देश और समाज जब अपने नैतिक आदर्शों को खो बैठते हैं, वे किसी भी प्रकार अहिंसक बने नहीं रह सकते। यही हिंसा हमें अनैतिकता, सीमातीत भ्रष्टाचार, पद व धनलोलुपता, नाना अपराध और हत्याओं के रूप में चारों ओर दिखाई देती है। 'अहिंसा' का नाम कोई ऐसा कवच नहीं है कि उसे धारण कर लेने मात्र से कोई अहिंसक हो जाता हो। अहिंसा एक समग्र जीवन-पद्धति और जीवन-दर्शन है। जीवन के प्रत्येक क्षण का वर्तन और व्यवहार है। नैतिकता, दया, करुणा, मैत्री और अपरिग्रह व सहकार उसके अनिवार्य अंग हैं। इन विविध अंगों की रक्षा किए बिना अहिंसा की रक्षा नहीं हो सकती। अहिंसा के अनेक रूप हैं जो स्व. महात्मा गांधी ने अपने जीवन में साक्षात् प्रयोग के द्वारा सिद्ध किये थे। महावीर अथवा महात्मा गांधी की अहिंसा नकारात्मक अहिंसा नहीं है, सक्रिय और सकारात्मक अहिंसा है। किसी भी प्रकार के अधर्म, अनाचार, अपमान व अत्याचार, शोषण व दुर्नीति के विरुद्ध 'अहिंसक-सत्याग्रह' एवं ऐसी समस्त वैयक्तिक, सामूहिक, शासकीय प्रवृतियों से सक्रिय असहयोग अहिंसा की दो अनिवार्य शर्तें हैं। सत्याग्रह और असहयोग के सिद्धांतों की जैसी बलि हमने दी है, वैसी अहिंसा के नाम पर और कहां हो सकती है ? भगवान महावीर और महात्मा गांधी के अहिंसा के आदर्श व हिंसा की परिभाषा को ठीक से समझना होगा, करना होगा। ऐसा किए बिना हम न तो अहिंसा का पालन कर सकते हैं और न हिंसा से बच सकते हैं।

- डायरेक्टर,
भोगीलाल लेहरचंद इंस्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी
२० कि.मी. जी.टी. करनाल रोड
पी. ओ. अलीपुर
दिल्ली- ११००३६

पाकिस्तान में जैन मंदिर और जैन जन

- श्री रमा कान्त जैन

नई दिल्ली से प्रकाशित पत्रिका **णमो तित्थस्स,** अंक अगस्त, २००३ में पृष्ठ ३-६ पर श्री श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन तीर्थ रक्षा ट्रस्ट (उत्तरी क्षेत्र) के अध्यक्ष श्री राजकुमार जैन का सेठ आनन्दजी कल्याणजी पेढ़ी के सेठ श्रेणिकभाई, अहमदाबाद को सम्बोधित पत्र दिनांक १८ जुलाई, २००३ छपा है। उक्त पत्र में देश विभाजन के समय पाकिस्तान में रह गये जैन मंदिरों और जैन जन के सम्बन्ध में सूचना दी गई है जो पत्र-लेखक द्वारा लगभग दस वर्ष पूर्व कतिपय बुजुर्गों से तद्विषयक जानकारी प्राप्त करने के प्रयास के परिणामस्वरूप है।

उक्त पत्र में अंकित सूचनानुसार पाकिस्तान में (देश विभाजन के समय) २६ श्वेताम्बर और ७ दिगम्बर जिनायतन विद्यमान रहे जिनका विवरण निम्नवत है -

क्रम सं.	**मन्दिर स्थल**	**मूलनायक/टिप्पणी**
	क. शिखरबन्द जैन श्वेताम्बर मन्दिर	
१.	थारी भावरियान, लाहौर शहर	
२.	कोट रुकनदीन, कसूर, जिला लाहौर	ऋषभदेव
३.	बाजार भाबरियान, गुजरनवाला	चिन्तामणि पार्श्वनाथ
४.	गली भाबरियान, रामनगर, जिला गुजरनवाला	चिन्तामणि पार्श्वनाथ
५.	स्यालकोट शहर में नमक मण्डी के निकट	
६.	नरवल, जिला स्यालकोट	
७.	संखत्र, जिला स्यालकोट	
८.	खांगा डोगरन, जिला शेखपुरा	भ. शांतिनाथ और भ. पार्श्वनाथ
६.	मोहल्ला चूड़ी सराय, मुल्तान	मूर्तियां मुंबई स्थानांतरित हो गईं।
१०.	रणछोड़ लाइन, कराची, (सिन्ध प्रान्त)	भ. पार्श्वनाथ
	ख. अन्य जैन श्वेताम्बर मंदिर	
११.	पिण्डी डडन खां, जिला झेलम	भ. सुमतिनाथ, भ. ऋषभदेव और भ. शांतिनाथ
१२.	गली भाबरियान, भेरा, जिला सरगोधा	भ. चंद्रप्रभु (लगभग ५०० वर्ष प्राचीन)

१३. ब्लाक नं. २, जैन मोहल्ला, डेरा गाज़ीखान (मूर्तियां भारत स्थानांतरित हो गईं।)

१४. काला बाग, जिला म्यांवाली

१५. लातम्बेर, जिला बन्नू

१६. बन्नूशहर

१७. रावल पिंडी छावनी

१८. हैदराबाद शहर

१९. न्यू हल्ला शहर (मीरपुर खास रोड)

२०. गौरी पार्श्वनाथ गांव गौरी पार्श्वनाथ

ग. जैन श्वेताम्बर घर मंदिर

२१. गुजरनवाला में कैम्पिंग ग्राउंड के सामने जी. टी. रोड पर पड़ाव पर भ. वासुपूज्य व आचार्य आत्माराम जी के चरण चिन्ह (एक बड़े गुम्बद के नीचे आत्माराम जी म. की समाधि। मूर्तियां, चरण चिह्न और काष्ठ-शिल्प लाहौर संग्रहालय में स्थानांतरित हो गये।)

२२. जिला गुजरनवाला में कंगनियावाका ग्राम के निकट जी. टी. रोड पर एस. ए. जैन गुरुकुल परिसर में

२३. जिला गुरजरनवाला में पापनखा ग्राम में

२४. बाग मोहल्ला, झेलम शहर भ. चन्द्रप्रभु

घ. जैन श्वेताम्बर दादावाड़ी (छोटे मंदिर)

२५ लाहौर छावनी में गुरु मंगत चरण चिह्न प्रस्तरांकन

२६. मुल्तान में रामलीला मैदान के निकट जैन भवन तदैव

२७. डेरा गाज़ी खां तदैव

२८. बहावल रियासत की तहसील डेरा नवाब के अंतर्गत ग्राम डेरावर में (दादा गुरु जिन कुशल सूरिजी के अन्त्येष्टि स्थल पर समाधि और लेख)

२९. हल्ला टाउन से २ कि.मी. पर न्यु हल्ला (मीर खास रोड) में चरण-चिह्न प्रस्तरांकन

ङ शिखरबंद जैन दिगम्बर मंदिर

१. लाहौर शहर में थारी बाबरियान में

२. लाहौर में पुरानी अनारकली में

३. मुलतान में मोहल्ला चूड़ी सराय में (मूर्तियां जयपुर स्थानांतरित हो गईं)

४. मुलतान छावनी में

अन्य जैन दिगम्बर मंदिर-

५. स्यालकोट छावनी

६. डेरा गाज़ी खां में ब्लाक नं. २, जैन मोहल्ला

७. कराची

स्थानकवासी उपाश्रयों का उल्लेख उक्त पत्र में नहीं है।

श्री जैन ने अपने उपर्युल्लिखित पत्र में सूचित किया है कि जहां तक उन्हें जानकारी है, पाकिस्तान में अब कोई जैन धर्मानुयायी शेष नहीं है। वहां से विस्थापित जैन महानगर दिल्ली और मुम्बई के अतिरिक्त पंजाब में जालंधर, होशियारपुर, लुधियाना और कोटकपुरा में; हरयाणा में अम्बाला, जगाधरी, यमुनानगर, फरीदाबाद, गुड़गांव और पानीपत में; जम्मू-कश्मीर में जम्मू में; राजस्थान में जयपुर, ब्यावर और अजमेर में तथा उत्तर प्रदेश में आगरा, मेरठ, गाजियाबाद, मुरादाबाद और सहारनपुर में आकर बस गये। चूंकि पाकिस्तान में अब जैन नहीं रहे, मंदिरों में पूजन नहीं होती। घर-मंदिर (चैत्यालय), उपाश्रय और स्थानक अधिकतर पाकिस्तान के प्राधिकारियों और जनता द्वारा हथिया लिये गये हैं। केवल शिखरबन्द मंदिर वहां अभी भी विद्यमान प्रतीत होते हैं।

पाकिस्तान बनने के पूर्व, अब उस ओर चले गये, पंजाब प्रान्त के १८ शहरों/कस्बों आदि, उत्तर पश्चिम सीमान्त प्रान्त के ४ स्थानों और सिन्ध प्रान्त के ३ स्थानों में रह रहे जैन जन के बारे में जो आंकड़े श्री जैन को प्राप्त हो सके, उनके आधार पर उनकी संख्या १३,३२५ बैठती है। इनमें सर्वाधिक संख्या ७,६०५ स्थानकवासियों की, तदनन्तर ४,७४० श्वेताम्बर मूर्तिपूजकों की और ९८० दिगम्बर जैनों की है। संकलित आंकड़ों को देखने से स्पष्ट है कि सूचना पूर्ण नहीं है। उदाहरणार्थ स्यालकोट छावनी और डेरा गाज़ीखां में जहां ब्लाक नं. २ जैन मोहल्ला में एक एक दिगम्बर जैन मंदिर रहा बताया गया है, दिगम्बर जैनों की कोई संख्या अंकित नहीं है, कदाचित् उनके बारे में कोई सूचना वहां से विस्थापितों से सम्पर्क न हो पाने के कारण उन्हें प्राप्त नहीं हो सकी। श्री जैन के द्वारा दिये गये आंकड़ों के अनुसार लाहौर में ३५०, रावलपिंडी छावनी में १७५, मुलतान में ३५० और कराची में १०५ दिगम्बर जैन रह रहे थे। यह भी विस्मयकारक है कि रावलपिंडी छावनी में

(शेषांश पृष्ठ ५० पर....)

गीत

क्या सच है, यह समझ न पाया।

जीव जन्म लेता, यह माना,
कभी न अपने को पहचाना,
आयु कर्म बीते, होता है मरन, किसी को कभी न भाया।
क्या सच है, यह समझ न पाया।।१।।

जग है जनम-मरन का संगम
सुख-दुख का भी है यह उद्गम,
आना बहुत सुखद लगता है, जाने भर से जी घबराया।
क्या सच है, यह समझ न पाया।।२।।

सुख में भोगे भोग अपरमित,
नहीं याद आए दुख किंचित,
मोह-नींद में सोया अब तक, अंत काल तक होश न आया।
क्या सच है, यह समझ न पाया।।३।।

घिरा कषायों के घेरे में,
गया समय मेरे तेरे में,
पर को गहा छूट नहिं पाया, रत्नत्रय को नहीं जगाया।
क्या सच है, यह समझ न पाया।।४।।

तन धोया, मन नहीं पखवारा,
नहीं विभाव, स्वभाव हमारा,
जाग्रत जीवन जिया न क्षण भर, मूर्च्छित होकर समय बिताया।
क्या सच है, यह समझ न पाया।।५।।

- **डॉ. महेन्द्र सागर प्रचण्डिया**
मंगल कलश
३६४, सर्वोदय नगर, आगरा रोड, अलीगढ़-२०२००१

एक चिन्तन

उत्पीड़क कल्कि राजा का बीज दग्ध करें

- डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

दिगम्बर जैन आगम में विदेह-मगध की सीमाएं खोजते समय उत्तरपुराण, पर्व ७६, में पंचमकाल के प्रथम कल्कि राजा चतुर्मुख की जानकारी मिली जिसने दिगम्बर दीक्षाधारी साधुओं को दिये गये प्रथम ग्रास को कर के रूप में वसूल करने का आदेश दिया था। जिन-दीक्षा धारियों के उत्पीड़न का यह प्रतीकात्मक घ्रंणित रूप था। इस विचार से बहुत पीड़ा हुई और मन इस खोज में लग गया कि आखिर ऐसा घृणित विचार प्रथम कल्कि राजा चतुर्मुख के मन में कैसे उत्पन्न हुआ होगा। जैन दर्शन की मान्यता है कि बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता। इस न्याय के अनुसार उत्पीड़न के उक्त स्वरूप का कारण भी होना चाहिये।

इस वर्ष पर्यूषण पर्व में दिल्ली में राजाबाजार स्थित दि. जैन खंडेलवाल मंदिर जी एवं प्राचीन अग्रवाल दि. जैन पंचायत मंदिर जी में प्रवचन करने का सौभाग्य मिला। दिल्लीवासियों के निकट सम्पर्क में भी आया। चर्चा के मध्य यह जानकारी मिली कि जैनेश्वरी दीक्षा की पवित्र-आहार पद्धति में कहीं किंचित परिवर्तन हुआ है और दीक्षाधारी वहां आहार हेतु गये/जाने लगे जिनके द्वारा इच्छित धनराशि दानस्वरूप जमाकर दी गयी थी। आहार हेतु गुप्त बोलियों की जानकारी भी मिली। यह भी ज्ञात हुआ कि धार्मिक आयोजनों (कुछ पूजा विधान आदि) में सम्मिलित होने की भी धनराशि निश्चित है, इस सूचना जानकारी पर यकायक विश्वास नहीं हुआ। फिर भी समाचार जगत की जिन-दीक्षा-विरोधी कृत्यों की सूचना-आलेखों के प्रकाश में ऐसा लगा कि ऐसा होना भी संभव है। विशेषकर उनके द्वारा जिन्होंने धार्मिक आयोजनों को आय का साधन बनाया है। इससे नवकोटि आहार शुद्धि का वचन एवं वृत्त-परिसंख्यान तप भंग होता है।

इस धार्मिक विराधना की पीड़ा मे नींद गायब हो गयी। जब सुबह हुई तो प्रथम कल्कि राजा के प्रथम-ग्रास कर के आदेश का विचार मन में कौंधा और लगा कि हमारी आगमविरूद्ध आहार-क्रियाएं ही तो कहीं कल्कि रूप में प्रतिफलित नहीं होतीं। राज्यसत्ता प्रायः उन्हीं बिन्दुओं से समाज में स्थान बना लेते हैं। वर्तमान मे सर्विस-सेवाकर इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। राजाबाजार जैन मंदिर में विराजित पूज्य

आचार्य श्री आनंदसागर जी मौनप्रिय से जब मै अपराह्नकाल मिला, उनको मैंने मेरे उक्त विचारों की जानकारी दी और कहा कि कहीं हम ही अपने पराभव के कारण तो नहीं होते ? यह प्रश्न बहुत ही भाव भरा और महत्वपूर्ण है। हमारी आज की लौकिक-उद्देश्य-लक्षित, लुभावनी, आगम विरोधी, अनैतिक तथा पुरातत्व कानून विरोधी गतिविधियां कहीं हमें भविष्य में भारी न पड़ें, इस दृष्टि से समाज के नेतृत्व एवं विद्वानों से विनम्र अनरुाध है कि वे तटस्थ भाव से इस दिशा में चिंतन कर समाज का मार्गदर्शन करें और धर्म-क्षेत्र में कानून-आगम विरोधी कार्यों से विरत रहें ताकि कल्कि राजा की उत्पत्ति का बीज ही दग्ध हो जाये और आहार दान की पुण्य क्रिया पुण्य रूप बनी रहे।

- बी-३६६, ओ. पी. एम. कालोनी
अमलाई, जिला-शहडोल (म.प्र.) ४८४११७

(**सम्पादकीय टिप्पणी**- हमारी समझ में पुराण कार आचार्य श्री ने कल्कि राजा की कथा से यह दर्शाया है कि एक समय ऐसे कल्किराजा का देश में शासन होगा जो अपरिग्रही दिगम्बर मुनियों पर भी कर लगाएगा तथा उनके पास कोई परिग्रह न होने के कारण उनसे आहार का प्रथम ग्रास कर के रूप में वसूल करने का आदेश देगा जिसके कारण मुनि धर्म का लोप हो जाएगा। उन आचार्य श्री ने यह कल्पना भी नहीं की होगी कि दिगम्बर मुनि परिग्रहवान भी हो सकते हैं, जैसा कि आज अनेक हो गए हैं क्योंकि आगम में तो परिग्रहवान को मोक्षमार्गी ही नहीं कहा है। आज तो हमारे अनेक पिच्छीधारी महामुनि एवं गणिनी आर्यिकाएं मंदिर, मठ, नवीन अतिशय क्षेत्र आदि के निर्माण के नाम से व अन्यथा भी अनेक प्रकार से श्रद्धालु श्रावकों की धार्मिक भावना का दोहन करके विपुल धन संचय करने में लगे हैं। कुछ के मुख्य केन्द्रों पर तो आयकर विभाग के छापे पड़ने के भी गुपचुप समाचार सुनने में आए हैं जिनमें राजनैतिक प्रभाव से तथा विपुल धन व्यय कर मामले को दबवा दिया गया। अब तो अनेक ने धर्म को ही अर्थार्जन का सुगम साधन बना लिया है। कई आचार्यों के शिष्य मुनि अपने चातुर्मास स्थल से अपने श्रद्धालु श्रावकों से अपने आचार्य श्री की निर्माण योजनाओं में भागीदारी के लिए विपुल राशि नियमित रूप से भिजवा कर उन्हें पुण्यशाली बनाते हैं तथा वे श्रावक भी प्रायः अपनी अघोषित आय से यह दानराशि भेंट करके मुनिराज की सार्वजनिक प्रशंसा के पात्र बनते हैं। यदि कोई कलयुगी शासन किन्हीं तथाकथित साधुओं द्वारा इस प्रकार अर्जित की जा रही धनराशि पर आयकर लगावे तथा दानवीरों से भी आयकर विभाग उनकी इस अघोषित आय के विषय में जांच पड़ताल करे तो कदाचित इस धर्म विरोधी कुप्रथा

की कुछ रोकथाम हो जाए। जिस द्रुत गति से श्रमण चर्या में शिथिलाचार बढ़ता जा रहा है, उसके चलते यदि कुछ पिच्छिधारी नग्न परीषह सहना मात्र ही दिगम्बर मुनि धर्म का पालन मानने लगें तो आश्चर्य ही क्या?

इस संबंध में यह भी उल्लेखनीय है कि आचार्य गुणभद्र के अनुसार भगवान शांतिनाथ के पहिले १५ तीर्थंकरों ने जो मोक्षमार्ग का प्रवर्तन किया था वह बीच-बीच में विनष्ट होता गया था तथा भ. शांतिनाथ ने जो मोक्षमार्ग प्रचलित किया था वही आज तक अखण्ड रूप से चला आ रहा है। किन्तु जिन-धर्म का वह लोप तो कलयुग के प्रादुर्भाव के सहस्रों वर्ष पूर्व की बात है। धर्म के लोप के कारणों पर कहीं विस्तार से प्रकाश डाला गया हो, यह हमारे देखने पढ़ने में नहीं आया। विज्ञ स्वाध्यायी पाठक कदाचित् इस विषय पर कुछ सार्थक प्रकाश डाल सकें। - **अजित प्रसाद जैन**)

(पृष्ठ ४६ का शेषांश....)

एक जैन श्वेताम्बर मंदिर रहे होने की बात कही गई है, किन्तु छावनी या शहर में श्वेताम्बर जैनों की संख्या अंकित नहीं है।

स्थानकवासियों का बाहुल्य गुजरनवाला (२१००), स्यालकोट (२१००), रावलपिण्डी शहर (१४००), लाहौर (७००), लाहौर जिलान्तर्गत कसूर (३५०), पसरूर-जिला स्यालकोट (३५०), मुलतान (१७५), रोहतास-जिला झेलम (१४०), कराची (१०५), झेलम (८०), नरवल-जिला स्यालकोट (७०) और काला बाग-जिला म्यांवाली (३५) में था।

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक सर्वाधिक १७५० गुजरनवाला में, तदनन्तर ७०० मुलतान में, ३५०-३५०-३५० लाहौर, कसूर और डेरा गाज़ीखां में, २८० नरवल (जिला-स्यालकोट) में, १७५ कराची में, जिला गुजरनवाला के पापनखा और रामनगर, जिला शेखपुरा के खांगाडोगरन, जिला स्यालकोट के संखत्र, झेलम और उस जिले के पिण्ड डडनखां, जिला म्यांवाली के कालाबाग में, बन्नू में, हैदराबाद (सिन्ध) में और मीरपुर खासरोड के न्यू हल्ला में प्रत्येक में ७०-७०, लातम्बेर (जिला बन्नू) और कोहार में प्रत्येक में ३५-३५ और सबसे कम स्यालकोट में १५ सूचित किये गये हैं।

यदि पाकिस्तान से विस्थापित होकर भारत आये किन्हीं जैन सज्जन के पास ऊपर दी गई जानकारी को परिवर्द्धित-संशोधित करने के लिये सूचना-सामग्री हो, तो उसे प्रदान करने हेतु उसका स्वागत है। - **ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ**

जैन जातियां

- श्री सनत कुमार जैन

शोधादर्श अंक ५० में श्री अजित प्रसाद जैन ने अपने सम्पादकीय में लिखा है कि अग्रवाल जाति की उत्पत्ति लिच्छवि क्षत्रियों के उग्र वंश से हुई जिसे अग्रवंश भी कहा गया है और इस वंश के मूल पुरुष महाराजा अग्रसेन भी भगवान पार्श्वनाथ एवं भगवान महावीर के समान लिच्छवि क्षत्रिय ही थे। इतिहास के अधिकारी विद्वान स्व. डॉ. बासुदेव शरण अग्रवाल ने भी महाराजा अग्रसेन को वैशाली से निकले लिच्छवि बताया है। लेकिन कुछ विद्वानों का कहना है कि अग्रवाल जैन जाति की उत्पत्ति लगभग एक हजार वर्ष पूर्व आगरा से हुई और ये अग्रवाल जैन व्यापार के सिलसिले में आगरा से चारों तरफ ८४ कोस यानी २५० किलोमीटर में फैल गये जिसमें उ. प्र. के पश्चिमी भाग के अतिरिक्त राजस्थान, हरियाणा एवं पंजाब के हिस्से आते हैं। चूंकि आगरा से इनकी उत्पत्ति हुई थी अतः ये आगरावाल जैन अथवा अगरवाल जैन कहलाने लगे। १५वीं शती ईस्वी में जैन धर्म का प्रभाव धीरे-धीरे कम होता गया तब अग्रवाल जैन जाति से जैन शब्द हट गया और केवल अग्रवाल कहलाने लगे। १५-१६वीं शताब्दी में दिगम्बर जैन साधुओं का भ्रमण कम हो गया था या यों कहे कि कम व्यक्ति दीक्षा ले रहे थे और दूसरी तरफ श्वेताम्बर जैन आम्नाय के तेरापंथी एवं स्थानकवासी साधू-साध्वी काफी संख्या में सक्रिय थे। तब उन्होंने अजैन अग्रवालों को पुनः श्वेताम्बर जैन बना लिया खासतौर पर हरियाणा एवं पंजाब में। अग्रवाल जाति का इतिहास जैन ग्रंथों एवं मंदिरों में काफी मिलता है।

इसी प्रकार बुंदेलखंड में परवार, गोलालारे, गोलापूरब, गोलसिधारे का भी इतिहास है। ऐसा कहा जाता है कि बुंदेलखंड में परवारे शब्द का मतलब होता है बाहरी और परवार जाति के लोग ५००-७०० वर्ष पूर्व पश्चिमी उ.प्र. से आकर बुंदेलखंड में बस गये। परवार अग्रवाल जैन जाति के ही हैं क्योंकि इनके अधिकांश गोत्र अग्रवाल जाति के ही हैं।

बुंदेलखण्ड को गोला प्रदेश भी कहा जाता है और गोलालारे, गोलापूरब एवं गोला सिधारे यहां के मूल निवासी हैं गोलालारे यानी गोला प्रदेश के, गोला पूरब यानी बुंदेलखंड के पूर्व में बसे लोग और गोल सिधारे का तात्पर्य है कि गोला प्रदेश (बुन्देलखण्ड) छोड़कर मध्यप्रदेश के भिण्ड-मुरैना में बस गये लोग।

उ.प्र. के ब्रज क्षेत्र में दिगम्बर जैनों में कई जातियां हैं जिनकी उत्पत्ति की खोज आवश्यक है। ब्रज की एक अग्रणी जाति लबेंचूवाल में अधिकांश गोत्र स्थान, व्यवसाय या सम्मान से सम्बंधित हैं उदाहरणार्थ बकेवर के बकेवरिया, किराने का काम करने वाले मोदी और समाज में कोई बड़ा काम कराने वाले सिंघई कहलाने लगे। अभी हाल में राजस्थान में एक पुराने दस्तावेज से विदित हुआ है कि सिरसागंज का प्रतिष्ठित सिंघई परिवार पहले अग्रवाल जैन था और उनका गोत्र गर्ग था। उन्होंने बटेश्वर में रथ आदि चलवाया था अथवा समाज के लिये कोई बड़ा परोपकारी कार्य किया था। अतः उन्हें सिंघई से सम्मानित किया गया। ब्रज क्षेत्र के अधिकांश जैन अपने को भगवान नेमिनाथ अथवा पार्श्वनाथ का वंशज बताते हैं। इस तरह इनका सम्बंध लिच्छिवि क्षत्रियो से होना चाहिये।

- १६, वि.ी कालोनी, रायपुर (छत्तीसगढ़)

(**सम्पादकीय टिप्पणी-** अग्रवाल जाति का मूल निवास अग्रोहा-आग्रेय गण राज्य था- हमारा यह मत इस जाति के प्राचीन इतिहास पर शोध खोज करने वाले सुप्रसिद्ध विद्वान डॉ० वासुदेव शरण अगवाल, डॉ० स्वराज मणि अग्रवाल, श्री सत्यकेतु विद्यालंकार, पं. परमानन्द शास्त्री आदि के निष्कर्षों पर आधारित है तथा बहुमान्य है। अग्रोहा नगर का विध्वंस कई बार विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा हुआ- सर्वप्रथम सिकन्दर द्वारा ३२७ ई० पू० में तथा अन्तिम मोहम्मद गौरी द्वारा १२वीं शती के अन्तिम चरण में। इस अंतिम विध्वंस के बाद अग्रोहा फिर कभी नहीं वसा और इसके बचे खुचे निवासी सारे देश में फैल गये। इस जाति पर जैन धर्म व वैस्णव धर्म का प्रभाव प्राचीनकाल से ही चला आ रहा है। जैन अजैन अग्रवालों में पारस्परिक विवाह संबंध भी दीर्घकाल से होते आ रहे हैं और सामाजिक रीति रिवाज भी सबके एक से ही हैं। आगरा अगवाल जाति का एक प्रमुख केन्द्र तो है पर यह निकास स्थल नहीं है। इसका इतिहास ही ५०० वर्ष का माना जाता है।

- अजितप्रसाद जैन)

चिन्तन कण

जीव कर्म स्मृतियों से बंधा है

जीव को बन्धन अपने किये कर्मों की स्मृतियों का है, कर्मों का नहीं। कर्म क्रिया होने के निमित्त होते हैं। बंधन नहीं। जीव को जब जिस संचित कर्म स्मृति के अनुकूल निमित्त मिलता है, तब जीव उस कर्म स्मृति के अनुरूप कार्य करने के विचार करता है। यही कर्मोदय होना है। इसे अपने में होता देखिये। क्रिया की प्रतिक्रिया होती है, जो क्रिया के अनुरूप होती है। जीव अपने किये कर्मों की स्मृतियों को अपने एक जन्म से दूसरे जन्म में करने को ले जाता है। इसी से जीव जन्म लेते ही आहार भय निद्रा की क्रियायें करने लगता है। यही कर्मास्रव होता है। कर्मोदय से आये कर्म विचारों की क्रिया करने से जीव उस कर्म विचार की क्रिया करने से बंध जाता है। यही जीव को कर्मों का बंधन है। यदि जीव कर्मोदय से आये कर्म विचारों के अनुरूप क्रिया न करे तो जीव में उन कर्मों की प्रतिक्रिया उसके दूसरे जन्म में न होगी और जीव में उस कर्म करने का अभाव हो जावेगा। यही कर्म निर्जरा होना है। यदि जीव कर्मोदय से आये कर्मविचारों के अनुरूप निरन्तर क्रिया न करता जावे तो जीव में नये कर्म करने के विचार न होंगे। इससे एक समय ऐसा आवेगा कि संचित कर्म विचारों की स्मृतियों का अन्त हो जीव कर्म क्रिया होने से मुक्त हो मोक्ष पर्याय वाला हो जावेगा। मोक्ष अन्त होना है। अन्त कर्म क्रिया होने के विचारों का होता है। शास्त्र ज्ञान करने से जीव शास्त्र ज्ञान से बंध जाता है। जबकि होना बंधन मुक्त है। क्रिया करने से जीव क्रिया होने से बंध जाता है और क्रिया न होने से क्रिया होने का अन्त हो जाता है। शास्त्र प्रेमियों को शास्त्रों के काल्पनिक कर्मबंधनों के अज्ञानपूर्ण विचारों से अपने को मुक्त करना होगा। तभी सम्यक् ज्ञान होगा।

- धन्य कुमार जैन
सिहोरा (जबलपुर) म.प्र.

चिन्तन कण

शंका

उपगूहन

क्षुल्लक के वेष में प्रसिद्धता-मान्यता के कारण सेठ ने भक्तिभाव से एक व्यक्ति को चैत्यालय में ठहरा रखा था। वह व्यक्ति चैत्यालय से रत्न चुराकर भाग रहा था। पुलिस ने पकड़ लिया और तहकीकात के लिये उसे सेठ के पास लाया गया-तो सेठ ने धर्म की प्रभावना को कलंक न लगे- उस धूर्त को छुड़ा लिया और कहा कि यह रत्न उसने ही धर्मात्मा क्षुल्लक को दिये हैं।

क्या यह कथा उपगूहन अंग के चित्रण की प्रशंसनीय उदाहरण है? जिनेन्द्र भक्त सेठ का नाम उपगूहन अंग के वर्णन में **श्री रत्नकरंड श्रावकाचार** में है। व्याख्याकार ने यह कथा दी है। क्या स्वामी समंतभद्राचार्य के सामने यह कथा हो सकती थी, अवश्य कोई दूसरी बात होगी। सामान्य व्यक्ति वेष की वास्तविक की तरह रक्षा करे-ऐसे मूर्खता पूर्ण असामाजिक, अधार्मिक आचरण से धूर्त-अज्ञानी-वेषधारी पीछी-कमण्डल-धारी मुनि महाराजों-आर्यिकाओं को हर हालत में परम पूज्य कहे और उनके विज्ञापन का खर्च भक्तिभाव से पूरा करे, क्या यही शिक्षा देने के लिये व्याख्याकार ने इस कथा की प्रसिद्धि नहीं की होगी, क्योंकि शिथिलाचार तो हमेशा से होगा-आज ही कोई नहीं हो गया है।

समाज सम्यग्दर्शन की द्रव्यानुयोग की परिभाषा को क्या जाने ? आठ अंगों के नाम भी जान ले तो उन अंगों का ज्ञान तत्संबंधी कथा से ही समझ लेता है। अपने बेटे या अपने भाई के अपराधों को जैसे छिपाना और उन अपराधियों की कारागार से रक्षा परम आवश्यक हैं। उसी तरह प्रत्येक वेषधारी हमारा परम पूज्य गुरु गणधर गणिनी हैं। वे कोई अपराध कर ही नहीं सकते ? वेष बनाते ही दोष मुक्त हो जाते हैं, शीर्षस्थ भी।

त्यागी-विद्वान-संपादक इस कथा के सामने लाचार हैं। उत्तर होता है कि आगम की यही आज्ञा है। क्या यह आज्ञा प्रधानं सर्व धर्मानाम् जैन शासन की आज्ञा है?

विद्वानों की तो परिषद है-वह परिषद अपनी पूरी सभा मे विचार कर निर्णय **शोधादर्श** में प्रकाशित कर दे। त्यागी तो सब काल द्रव्य के कालाणुवों की भांति

अकेले हैं, दीक्षा लेते ही स्वतंत्र परम पूज्य प्रत्येक है। वे अपना-अपना निर्णय अलग-अलग शोधादर्श में प्रकाशित करने की कृपा करें।

- सुखमाल चंद जैन

[सम्पादकीय टिप्पणी- स्वामी समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार (श्लोक सं. २०) में उपगूहन अंग के पालन में प्रसिद्धि प्राप्त करने वालों में सेठ जिनेन्द्र भक्त का केवल नामोल्लेख किया है। उनके समय इस कथा का क्या रूप रहा होगा, इसकी आज जानकारी उपलब्ध नहीं है। यह कथा जिस रूप में आज हमें प्राप्त है वह कदाचित् भट्टारकीय युग में साधुओं के शिथिलाचार को ढंकने के लिए पल्लवित की गई होगी या फिर व्याख्याकार पंडित जी ने अपनी कल्पना से स्वयं रची होगी। हमारी समझ में इस कथा के दो अंग होने चाहिए। एक तो यही जैसा कि सेठ ने उस धूर्त को निरपराध बताकर राज दंड से बचा कर या और इस प्रकार जैन क्षुल्लकवेश को सार्वजनिक रूप से अवमानना कलंक से बचाया पर साथ ही कथा का दूसरा अंश भी होना चाहिए जिसमें धर्म गुरुओं व श्रावक समाज ने उस क्षुल्लक वेशी धूर्त को प्रायश्चित स्वरूप क्या दंड दिया जिससे अन्य कोई धूर्त इस प्रकार जैन साधुओं को कलंकित करने का साहस न करे।

जैसा कि शंकाकर्ता बंधुवर सुखमाल चंद जी ने अपेक्षा की है विद्वज्जनों, पूज्य त्यागीजनों व सुधी पाठकों से अनुरोध है कि इस विषय पर और प्रकाश डालने की कृपा करें। - अजित प्रसाद जैन]

आजकल ठंड के दिन हैं

– साहू शैलेन्द्र कुमार जैन, एडवोकेट

नहाने में गुनगुने जल से नहायें। उसमें थोड़ा सा नमक मिला लें। शरीर में हड़कल, थकन, दुखन होगी वहां आराम करेगा।

चाय-अमृतपेय है यह। थोड़ा सा गुलबनफशा, जरा सी काली मिर्च दरदरी करके उबालें। उतारकर ढक कर रख दें। मीठे के लिये बताशे मिलायें। ज्यादा जायकेदार बनानी है तो मीठे के लिए उबालते समय में मुलहटी डालें। ठंड से जुकाम, नजला, गलेकी खराश, थकन, बुखार आवे जैसा लगना सभी में लाभकारी। बिना चाय की पत्ती की चाय।

गाजर या शलजम के टुकड़े करके जल में उबालें। मय गाजर-या शलजम टुकड़ों के दिन में नाश्ते में लें, भोजन के साथ लें। अच्छा लगे तो अदरक का रस निचोड़ लें, चाहे नीबू निचोड़ लें। जब प्रयोग करेंगे कुछ दिन तो पला लगेगा। बड़ी गजब की पौष्टिक चीज है। गुड़ भी मिलाया जा सकता है।

जो लोग शाम को थके, गिरे पड़े से घर आते हैं। उनके लिये नहाने के लिये गर्म पानी करायें। पोटली में टेसू के फल और अजवायन लटका दें, पानी में उबलते में। पानी उबालें। पोटली निकालकर नहाने लायक ठंडाकर बंद गुसलघर में नहायें। स्वयं देखें एकदम तरोताजा हो जायेंगे। चाहे पानी में थोड़ा नमक भी मिला लें।

रात को कई बार पेशाब आने की शिकायत में सोने से पहले ५ पिश्ते चबाकर ऊपर से फीका दूध पियें। या एक बड़ी चम्मच तिल में २ बड़ी चम्मच गुड़ की शक्कर मिलाकर जायका लेकर खायें। जायकेदार घर की बनी, शुद्ध धुले बिने तिल की गजक है। चाहे इसमें एक दो पिश्ते भी काटकर डाल लें। दुनियां की गजकों में सबसे ज्यादा जायकेदार और शुद्ध। खुशबू के लिये छोटी इलायची बारीक पीसकर डाल सकते हैं।

सरसों बारीक पीसकर नमक काली मिर्च के पावडर के साथ सुबह ब्रेड, पराठा, रोटी पर छिड़ककर नाश्ते में लें। जुकाम नहीं होगा।

– शैलेन्द्र भवन, खुरजा- २०३१३१

रामजन्म और तुलसीदास

- जस्टिस एम. एल. जैन (से.नि.)

रामचरित मानस के रचयिता सन्त तुलसीदास के जीवन की मुख्य घटनायें इस प्रकार हैं-

	सन्	सम्वत्
जन्म	१४६७	१५५४
मानस प्रारम्भ	१५७४	१६३१
मृत्यु	१६२३	१६८०

इसका मतलब यह है कि जब बाबरी मस्जिद का निर्माण सन् १५२८ (१५८५) में हुआ, तब तुलसीदास जी ३१ वर्ष के थे। यदि विवादित स्थल पर कोई राम मंदिर होता और उसे तोड़ा गया होता तो उसका जिकर तुलसीदास जी अपनी करीब एक दर्जन रचनाओं व स्वयं मानस में, किसी एक में अवश्य करते।

इसके अलावा तुलसीदास जी ने राम जन्म के विषय में लिखा है कि जब कौशल्या के प्रसव हुआ, और उन ने नवजात को देखा, तो पाया कि वे चतुर्भुज थे। उनके हाथों में क्रमशः शंख, गदा, चक्र और पद्म थे। इस पर माता ने कहा कि हे भगवन् लोग यह कैसे विश्वास करेंगे कि आप नौ माह मेरे गर्भ में रहे थे, बल्कि लोग हंसेंगे, इसलिये आप बाल लीला कीजिये। उन ने माता को कथा कहकर समाधान किया और फिर सद्यजात शिशु का रूप धारण कर रोने लगे, तब बालक के जन्म की खुशियां मनाई जाने लगी। जाहिर है कि राम जन्म एक मिथिक कल्पना है। यह कहना तो अब और भी कठिन है कि जिस जगह आज रामलला विराजे हैं, वहीं राम की जन्मस्थली है। ऐसा तो तुलसीदास जी ने भी नहीं कहा फिर, यह किस आधार पर कहा जाता है कि राम का जन्म विवादित स्थल पर ही हुआ।

यदि हिन्दू आस्था का सवाल है, तो क्या विश्व हिन्दू परिषद व उनके कार सेवक ८५ करोड़ हिन्दुओं का या उनकी आस्था का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं ? नहीं। निश्चय ही वे राम के बारे में तुलसीदास जी से ज्यादा नहीं जान सकते।

- बी. ३, श्रीराम मार्ग, श्याम नगर, जयपुर (राज.)

(विद्वान लेखक ने ठीक ही लिखा है। बाबर के समय तक विष्णु मंदिर ही बनते थे जिनमें सभी अवतारों की मूर्तियां भी हो सकती हैं, स्वतंत्र राम मंदिरों का निर्माण तथा राम पूजा का प्रारंभ तो रामचरित मानस के प्रचार से ही हुआ प्रतीत होता है। महमूद गजनी के समय उसके सिपहसालार मसूद ने अयोध्या का सर्वप्रथम विध्वंस किया था तथा वहां के सुप्रसिद्ध विशाल भ. ऋषभदेव के जैन मंदिर को तोड़ा था। उस स्थान पर अब एक विशाल मस्जिद खड़ी है जो अयोध्या की सर्वाधिक प्राचीन मस्जिद है। अयोध्या भ. ऋषभदेव की भी जन्मभूमि है- प्रधान सम्पादक)

समाचार विमर्श

- श्री अजित प्रसाद जैन

अयोध्या की विवादित भूमि जैनियों को दिलवाने की मांग

"**जोधपुर, २६ अगस्त।** प्राचीन जैन वाङ्मय, ऐतिहासिक जैन ग्रंथों एवं प्रमाणिक इतिहास के आधार पर जैन समता वाहिनी ने अयोध्या को जैन धर्म का प्राचीनतम एवं प्रमुख तीर्थक्षेत्र बताते हुए श्रीराम जन्मभूमि-बाबरी मस्जिद स्थल को जैनों के सिपुर्द किए जाने की मांग की है।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के आदेश पर भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा विवादित स्थल पर कराए गए उत्खनन में प्राप्त अधिकांश पुरावशेषों को प्राचीन जैन मंदिर मूर्ति कला के भग्नावशेषों के रूप में चिन्हित करने का दावा करते हुए जैन समता वाहिनी के महासचिव श्री सोहन मेहता ने आरोप लगाया कि भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने अपनी रिपोर्ट में आधे अधूरे एवं अस्पष्ट तथ्य देकर मामले को जानबूझकर उलझाने और सत्यता पर पर्दा डालने का पूरा प्रयास किया है।

श्री मेहता ने कहा कि इसके पूर्व भी विवादित स्थल व आसपास के क्षेत्र की जो खुदाईयां हुई थी उनमें भी जैन मूर्तियों के भग्नावशेष व जैन धर्मग्रंथों में ही प्रयुक्त प्राकृत भाषा के अभिलेख प्राप्त हुए हैं तथा यहां की पूर्व खुदाई में ही प्राप्त तीर्थंकर आदिनाथ की तीसरी सदी की मूर्ति पटना के राजकीय संग्रहालय में प्रदर्शित है। विवादित स्थल से सटे कटरा मुहल्ले से प्राप्त भगवान आदिनाथ की ही १०वीं शताब्दि की खड्गासन मूर्ति मथुरा के पुरातत्व संग्रहालय में प्रदर्शित है तथा विवादित स्थल से मात्र ८ कि.मी. की दूरी पर अयोध्या के ही रौनाही इलाके में खुदाई से प्राप्त चौथी शताब्दी की जिनेन्द्र मूर्ति आगरा के संग्रहालय में रखी हुई है।" (श्वेताम्बर जैन दि. ८-६-०३)

अयोध्या भगवान श्रीराम के जन्म के भी सहस्रों वर्ष पूर्व हुए जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव व अन्य पांच तीर्थंकरों की जन्मभूमि है तथा यह जैनों का सर्वाधिक प्राचीन एवं एक प्रमुख तीर्थक्षेत्र है। मान्यता तो यह भी है कि भविष्य में जितने भी तीर्थंकर होंगे, सबका जन्म अयोध्या ही में होगा तथा यह तार्थंकरों की शाश्वत जन्मभूमि है। अयोध्या का इतिहास दीर्घकाल तक जैन धर्म से प्रमुखता से जुड़ा

रहा है तथा १२वीं शताब्दी के अंतिम चरण में हुए श्रावस्ती-अयोध्या के अंतिम स्वतंत्र राजा कौशलाधिपति सुहलदेव भी जैन ही थे जिनसे बहराइच के मैदान में युद्ध करते हुए पृथ्वीराज चौहान विजेता मोहम्म्द गौरी का साला सालार मसूद जो पूर्वी राज्यों के विजय अभियान पर निकला था, मारा गया था। बहराइच नगर के बाहर स्थित सालार गाजी की मजार पर आज भी उसकी मृत्यु (शहीदी) के दिन प्रतिवर्ष मेल लगता है तथा उर्स होता है। उसी युद्ध के दौरान् गौरी के भतीजे मखदूम शाह जूरन ने अयोध्या को लूटा था तथा वहां के सुप्रसिद्ध भव्य आदिनाथ जन्मभूमि जिनमंदि को तोड़कर उसी के मलबे से विशाल जूरन मस्जिद का निर्माण कराया था। १६वं शताब्दि में अवध के नवाब सआदत खां के जैन मंत्री केसरीमल के यह सिद्ध क देने पर कि जूरन मस्जिद जैन मंदिर को तोड़कर बनाई गई थी, सहृदय न्यायप्रि नवाब ने जैनियों को जूरन मस्जिद की एक दीवाल तोड़कर एक छोटा आदिनाथ मंदि बनाने की अनुमति प्रदान कर दी थी। जूरन मस्जिद की पुश्त पर निर्मित भगवा आदिनाथ टोंक मंदिर के नाम से विख्यात यह मंदिर अयोध्या में अन्य भव्य जै मंदिरों के होते हुए भी सहस्रों जैन तीर्थयात्रियों की श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है

सन् १५२८ में मुगल बादशाह बाबर के सरदार अमीर बाकी द्वारा निर्मित करा गये बाबरी मस्जिद के नाम से वर्तमान में विख्यात भवन में न तो मुल्ला के अज़ा देने हेतु कोई मीनार ही थी, न ही इसमें कभी नमाज पढ़ी गई। प्रख्यात पत्रकार श्र भानुप्रताप शुक्ल ने तो लिखा है कि यह कभी मस्जिद थी ही नहीं। इस भवन विशाल जैन मंदिरों के तीन शिखरों के समान तीन गुम्बज थे जबकि बड़ी से ब मस्जिद में भी प्रायः एक ही गुम्बज होता है जिसके नीचे बने मिम्बर पर चढ़कर इमा नमाज पढ़वाता है। इस भवन में तीन पंक्तियों का एक फारसी लेख भी अंकित जिसका भावार्थ निम्न प्रकार है-

पंक्ति १- बादशाह बाबर जिसके न्याय की अट्टालिका स्वर्ग की अन्यत उँचाईयों को छूती है,

पंक्ति २- के आदेश से सहृदय अमीर बाकी ने फरिश्तों के उतरने का स्थ बनाया।

पंक्ति ३- उसकी कृपा सदा बनी रहे, इसके निर्माण को मैंने ९३५ हिजरी कराया।

६३५ हिजरी संवत् १५ सितम्बर सन् १५२८ से ५ सितम्बर १५२६ ई. के समकक्ष था। दुनिया की लाखों मस्जिदों में से प्राचीन से प्राचीन को भी उसके निर्माता ने फरिश्तों के उतरने का स्थान नहीं बताया है । सभी तीर्थंकरों का अवतरण स्वर्गों से ही हुआ था और उनका सम्पूर्ण अलौकिक जीवन सभी प्राणियों के कल्याण के लिए समर्पित रहा। अतः यदि अमीर बाकी ने अपनी इस्लामी संस्कृति की सोच में तीर्थंकरों के स्वर्गावतरण के प्रतीक उनके जन्म भूमि मन्दिर स्थल को फरिश्तों के उतरने का स्थान लिखवाया हो तो इसमें गलत ही क्या है। अतः इस विवादित स्थल पर मूल रूप में जैन तीर्थंकरों का भव्य जन्मभूमि मंदिर रहा हो जिसको तोड़कर या जिसके मंदिर रूप को नष्ट कर (वेदियों-मूर्तियों को नष्टकर) तथा कुछ अन्य हेरफेर कर तथाकथित बाबरी मस्जिद अस्तित्व में आई हो, इसकी भारी संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। यदि अमीर बाक़ी का आशय केवल राम न्म भूमि स्थल की पहिचान बनाए रखना होता तो वह फरिश्तों के स्थान पर फ़रिश्ते के उतरने का स्थान लिखवाता। वैसे भी १६वीं शताब्दी के पूर्व राम मंदिरों के अस्तित्व के पुरातात्विक प्रमाण नहीं प्राप्त होते। उसके पूर्व उत्तर भारत में वैष्णव मंदिरों में विष्णु तथा विष्णु के दशावतार मंदिरों के निर्माण का ही प्रचलन था।

उपरोक्त विश्लेषण से हमारा तात्पर्य इस मांग का समर्थन करना नहीं है कि विवादित स्थल को जैन धर्मावलम्बियों के सिपुर्द किया जाय। जैनियों ने इस प्रकार का दावा पहिले कभी नहीं किया और अब ऐसा दावा करने का औचित्य नहीं है। हमारी समझ में इस विवादित स्थल पर तीर्थंकरों के जन्म मंदिर की तथा भगवान श्री राम की जन्मभूमि की स्मृति स्वरूप 'जन्मभूमि चिकित्सालय/पुस्तकालय' या सार्वजनिक कल्याण की ऐसी ही किसी धर्म निरपेक्ष संस्था का निर्माण कर दिया जाना चाहिए।

अब पंचपरमेष्ठी नहीं षष्ठ परमेष्ठी

नरवारी में ससंघ विराज रहे अंकलीकर परम्परा के पट्टाचार्य श्री सन्मतिसागर जी ने अपने परम शिष्य लहवाचार्य बालाचार्य श्री योगीन्द्रसागर जी तथा 'परम भट्टारक परमेष्ठी' की पदवी से सद्य अलंकृत किए गए मुनिराज श्री जयसागर ज़ी की पदवियों के विषय में स्थिति स्पष्ट करते हुए अपने मंगल प्रवचन में बताया कि लहवाचार्य, पंडिताचार्य तथा परम भट्टारक परमेष्ठी ये तीनों शब्द एकार्थ वाची हैं तथा यह पद उपाध्याय के ऊपर तथा आचार्य से छोटा होता है।

(अंकलीकर वाणी २० अक्टूबर, २००२)

अभी तक जैन धर्म में पंचपरमेष्ठी की ही मान्यता थी पर अब अंकलीकर परम्परा के पट्टाचार्य श्री की अनुकम्पा से आचार्य परमेष्ठी और उपाध्याय परमेष्ठी के बीच 'लहवाचार्य/पंडिताचार्य/परम भट्टारक परमेष्ठी' की एक नई श्रेणी का उदय हो गया है। इन्हें उपाध्याय परमेष्ठी में गिनना इनकी अवमानना होगी और आचार्य परमेष्ठी ये हैं नहीं। अब कम से कम अंकलीकर परम्परा के साधु-साध्वियों तथा उनमें श्रद्धा रखने वाले श्रावकों को पंच नमस्कार के बजाय षट् नमस्कार मंत्र की जाप-साधना-आराधना करनी चाहिए। हमारे दक्षिणात्य भट्टारक स्वामियों के लिए भी यह एक खुशखबरी है। जगद्गुरु तो वे हैं ही, केवल नग्न परिषह सहना स्वीकार कर लें तो वे तुरन्त भट्टारक से परम भट्टारक परमेष्ठी पद की पूज्यता भी प्राप्त कर लेंगे।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो लहवाचार्य-परम भट्टारकाणं, णमो उवझायणं, णमो लोए सव्वे साहुणं।

नवग्रह शांति जिनमंदिर निर्माण

"भ. महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर में श्री नवग्रह शांति जिनबिम्ब पंचकल्याणक महोत्सव सम्पन्न

भ. महावीर की जन्मभूमि (नालन्दा-जिलान्तर्गत) कुण्डलपुर के नंद्यावर्त महल परिसर में निर्माणाधीन नूतन जिनालयों में नवग्रह शांति जिन मंदिर में विराजमान होने वाली जिन प्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा ४ जुलाई से ९ जुलाई ०३ तक तीर्थ विकास की प्रेरणास्रोत परम पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी (ससंघ) के पावन सान्निध्य में सानंद सम्पन्न हुई। १-७ जुलाई आषाढ़ शु. अष्टमी को प्रातः नित्य अभिषेक पूजन के पश्चात नवग्रह हवन हुआ। ज्ञातव्य हो कि नौ जिन भगवन्तों की आराधना नवग्रह की शांति के लिए की जाती है। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के उपरांत ११ जुलाई को नवग्रह शांति विधान पू. माताजी के सान्निध्य में सम्पन्न किया गया।

– सम्यग्ज्ञान पत्रिका, अगस्त २००३

पूज्य गणिनी प्रमुख ज्ञानमती माताजी ने नवग्रहों की कोप दृष्टि से बचने के लिए विशिष्ट पूजा विधान हवन किए जाने तथा इस प्रयोजन सिद्धि के लिए नवग्रह मंदिर का निर्माण कराकर ग्रहों की कोप शक्ति को जैनधर्म की भी मान्यता प्रदान कर दी। कदाचित यही व्यवहार धर्म है भले ही इससे कर्म सिद्धान्त की वैज्ञानिकता का मखौल होता हो।

ओ. श्री ज्ञानमत्यैय नमः।

तीर्थंकर ऋषभदेव जन्मभूमि अयोध्या तीर्थ

पूज्य गणिनी ज्ञानमती माताजी की संघस्थ उनकी शिष्या तथा गृह अवस्था की बहिन पूज्य आर्यिका चन्दनामती जी सम्यग्ज्ञान पत्रिका के सितम्बर २००३ के अंक में तीर्थंकरों के जन्मभूमि परिचय लेख में तीर्थंकर ऋषभदेव जन्मभूमि अयोध्या तीर्थ का परिचय देती हुई लिखती हैं-

'गुरु मन्दिर- रायगंज मंदिर के परिसर में समवशरण मंदिर के ठीक सामने एक भवन में **कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी की मूर्ति** तथा उसके एक ओर २०वीं सदी के प्रथमाचार्य चा.च. श्री शांतिसागर जी महाराज के चरण एवं दूसरी ओर ऋषभदेव प्रतिमा के निर्माण के प्रेरणास्रोत आचार्यरत्न श्री देशभूषण म. के चरण २३ मार्च १९९५ को विराजमान किए गए हैं।

शासन देवताओं की वेदी- रायगंज मंदिर में श्री गणिनी माताजी की प्रेरणा से भगवान ऋषभदेव के शासन देव गोमुख यक्ष और शासन देवी चक्रेश्वरी माता की वेदियां बनवाई गई हैं तथा तदाकार क्षेत्रपाल पद्मावती देवी की दो वेदियां निर्मित हुई हैं।'

रायगंज मंदिर के निर्माणकर्ता तथा भगवान ऋषभदेव की विशाल भव्य खड्गासन प्रतिमा विराजमान कराने वाले समाजभूषण साहू शांतिप्रसाद जी तथा ला. पारसदास जी (दिल्ली) ने इस पावन तीर्थक्षेत्र की महानता के प्रतिकूल मानकर सम्पूर्ण मंदिर परिसर में कहीं अपना नामोल्लेख भी नहीं होने दिया। उन्होंने रायगंज मंदिर का निर्माण विशुद्ध तेरहपंथी आम्नाय के तीर्थ के रूप में कराया था जिसे अब विकास के नाम पर पूर्णतः २० पंथी रंग दे दिया है। भगवान पार्श्वनाथ के जीवन की किसी घटना से अयोध्या तीर्थक्षेत्र का कोई संबंध रहा हो हमें ज्ञात नहीं, न ही उनका वर्तमान में धर्म शासन प्रर्वत रहा है। अतः पद्मावती देवी की पूजा उपासना के प्रसार के अतिरिक्त इस मंदिर में उनकी वेदी निर्माण तथा मूर्ति विराजमान करने का और भी कोई अर्थ हो सकता है हम नहीं समझ पा रहे हैं। तदाकार के यहां क्या अर्थ है, यह भी हम नहीं समझ पा रहे हैं। कदाचित गणिनी माताजी ने उनके प्रत्यक्ष दर्शन करके उनकी तदाकार मूर्तियां विराजमान कराई हैं। गुरु मंदिरों के निर्माण की परम्परा श्वेताम्बर आम्नाय में दादाबाड़ी के रूप में मध्ययुग के विकसित हुई जिसकी अब दिगम्बर आम्नाय में नकल की जा रही है। प्रातः स्मरणीय भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की गत साधिक दो सहस्र पर्वों में कभी पूर्व में मूर्ति निर्माण नहीं की गई, न ही अन्य किसी महान् से महान् प्राचीन आचार्य की। कुन्दकुन्द स्वामी के अनन्य भक्त तथा उनके प्रमुख टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्र, आचार्य जयसेन जैसे प्राचीन महान् आचार्यों ने या उनके अन्य किसी टीकाकार ने या इस युग में हुए उनके ग्रंथों के महान्

स्वाध्यायी एवं प्रवचनकार कानजी स्वामी ने, किसी ने भी कभी यह दावा नहीं किया कि कुन्दकुन्द कलिकाल सर्वज्ञ थे। भगवान पार्श्वनाथ व भगवान महावीर स्वामी तथा उनके शासन में हुए जम्बूस्वामी पर्यन्त सभी केवलज्ञानी भगवन्त, कलियुग में जन्मे होने के कारण कलिकाल सर्वज्ञ ही थे। अन्य किसी महान् से महान् आचार्य को कलिकाल सर्वज्ञ कहना क्या उन केवली भगवन्तों का अवर्णवाद नहीं है ?

कर्म-पंथ निर्वाण

कर्मशील मानव ही जग में पाता है निर्वाण।
पूर्ण ब्रह्म साकार सनातन बन जाता भगवान।।
सत्य अहिंसा त्याग तपस्या, जिनका पथ-पाथेय।
परसेवा परमार्थ पराक्रम ही जिनका है ध्येय।।
होते सफल मनोरथ वे ही पाते यश अम्लान।
बनते गौतम, बुद्ध, तथागत, राम, कृष्ण, हनुमान।।
कर्म-क्षेत्र से कभी पलायन करते नहीं प्रबुद्ध।
रखते संयम नियम ध्यान से तन, मन, वचन विशुद्ध।।
यही जैन-दर्शन है प्यारे! गीता का वरदान।
आत्म-ज्ञान से बड़ा न कोई कहीं विजय अभियान।
त्याग दिया था, महावीर ने धन, वैभव-संसार।
बने दिगम्बर पूर्ण उदासी, त्यागा जल, आहार।।
किन्तु न त्यागी संकल्पों की, चादर दिव्य महान।
बने वीर से वीर शिरोमणि, वर्धमान गुण खान।।
चलो! आज हम भी व्रत ले लें, नहीं रूकेंगे रंच।
आत्म-तत्व की खोज करेंगे,
तज छल, कपट, प्रपंच।।
यही एक पूजा है जग में, यही प्रीति प्रतिमान।
कर दें देश जाति को अपना हम सर्वस्व प्रदान।।

- डॉ. परमानन्द जड़िया

'जड़िया निवास', ५१, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ-१८

साहित्य सत्कार

(१) **तीर्थक्षेत्र कम्पिला जीः** ले. प्रकाशक- श्री ऋषभदेव कल्याण कोष, सीताराम मार्केट, मैनपुरी-२०५००१; प्र. वर्ष-२००३; पृष्ठ-१६२; मूल्य रु. ५१/-

समीक्ष्य कृति में भगवान विमलनाथ की गर्भ-जन्म-तप ज्ञान चार कल्याणकों की पावन स्थली तीर्थक्षेत्र कम्पिला जी का परिचय प्रस्तुत किया गया है तथा क्षेत्र के पौराणिक इतिहास पर प्रकश डालते हुए क्षेत्र के दि. जैन मंदिर में प्रतिष्ठित प्रतिमाओं का विवरण दिया गया है। विद्वान लेखक का यह भी निष्कर्ष है कि कम्पिला जी ही वास्तव में शूकर क्षेत्र है, भगवान विमलनाथ ही वरहावतार हैं और उन्होंने ही पाद पंक में दबी पृथ्वी पर रहने वालों का उद्धार किया था। यह क्षेत्र उत्तर प्रदेश के फर्रूखाबाद जिले की तहसील कायमगंज के रेलवे स्टेशन से ८ कि.मी. कीं दूरी पर स्थित इस समय एक छोटा सा गांव रह गया है। स्टेशन से क्षेत्र तक पक्की सड़क है पर यातायात के क्या साधन उपलब्ध हैं तथा क्षेत्र की धर्मशाला में यात्रियों को क्या सुविधाएं उपलब्ध हैं इसका उल्लेख नहीं किया गया है। यदि क्षेत्र की प्रबंध व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला गया होता तथा क्षेत्र के वर्तमान पदाधिकारियों का भी संक्षिप्त परिचय दिया गया होता तो पुस्तिका और अधिक उपयोगी हो जाती। यह तीर्थक्षेत्र अभी तक बहुत कुछ उपेक्षित रहा है पर अब लगता है समाज का ध्यान इस के विकास की ओर भी गया है। गत दिसम्बर मास में क्षेत्र पर भव्य पंचकल्याणक प्रतिष्ठा आयोजित कर भगवान विमकलनाथ की १३ फुट उतंग खड्गासन प्रतिमा व कुछ अन्य प्रतिमायें विराजमान की गई हैं तथा मानस्तंभ का भी निर्माण हुआ है। पिछले कुछ वर्षों में श्वेताम्बर समाज ने भी इस क्षेत्र के विकास में उल्लेखनीय कार्य किया है तथा भव्य मंदिर धर्मशाला आदि का निर्माण कराया है। अच्छा होता यदि पुस्तिका में उक्त निर्माणों का भी समुचित परिचय दिया जाता।

कम्पिला जी तीर्थक्षेत्र पर कदाचित् यह प्रथम पुस्तक है तथा संग्रहणीय है।

(२) **रजत जयन्ती स्मारिकाः** दिगम्बर जैन मंदिर स्टेट बैंक कालोनी दिल्ली-६; प्रकाशक-वीर युवा संगठन, स्टेट बैंक कालोनी, जी.टी. करनाल रोड दिल्ली-६

श्री दिगम्बर जैन मंदिर, स्टेट बैंक कालोनी, दिल्ली-९ की स्थापना के २५ वें वर्ष प्रवेश के सुअवसर पर उक्त मंदिर से जुड़े जैन समाज के युवा संगठन ने इस रजत जयन्ती स्मारिका को प्रकाशित किया है। स्मारिका में श्री मंदिर जी की वेदियों के चित्र, १९८९ में सम्पन्न हुई वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव के चित्र तथा मंदिर का विवरण

तो दिया गया ही है साथ ही सम्पूर्ण दिल्ली के दिगम्बर जैन चैत्यालय एवं मंदिरों की सूची पते सहित देने से इसकी उपयोगिता बढ़ गई है। स्मारिका संग्रहणीय है।

(३) **माँ मुझे भी हक है जीने का:** ले. श्री सुरेन्द्र मुनि जी; प्रकाशक-श्री तारण गुरु जैन ग्रंथालय, शास्त्री सर्कल, उदयपुर-३१३७८; प्र. वर्ष-२००३; पृष्ठ सं. १२४; मूल्य- रु. १५०/-

राजस्थान (अजमेर) में जन्मे युवा स्था. मुनि श्री सुरेन्द्र जी की उपन्यास विधा की रोचक शैली में स्रजित इस कृति में भ्रूण हत्या के पाप के विरूद्ध समाज को जाग्रत करने का प्रयास किया गया है । कथानक का तानाबाना राजस्थान-पंजाब के कस्बाई परिवेश के एक सम्पन्न जैन परिवार की नवविवाहिता महिला को मुख्य पात्र बना कर बुना गया है। हमारी समझ में आजकल गर्भ निरोधक औषधियों तथा उपकरणों के प्रयोग का प्रचार इतना बढ़ गया है कि अनचाहा गर्भपात कराने वाली विवाहित महिलाओं की संख्या अत्यल्प ही होगी और वह भी मुख्यतया गर्भस्थ शिशु का लिंग ज्ञात होने पर लड़की को जन्म देने से बचने के लिए कराती हैं जिसका कारण दहेज प्रथा का बढ़ता भयंकर अभिशाप है। वैसे गर्भस्थ शिशु का लिंग ज्ञात करना भी कानूनी अपराध बना दिया गया है। हम आशा करते हैं कि मुनि श्री दहेज प्रथा के सामाजिक अपराध के विरुद्ध भी अपनी सशक्त लेखनी उठाएंगे। पुस्तक रोचक है।

(४-८) प्राचार्य श्री निहालचंद्र जैन, श्री सदन, अग्रसेन नगर, अजमेर के सौजन्य से प्राप्त-

(४) **सुदर्शनोदय महाकाव्यम्:**-रचयिता- महाकवि आचार्य श्री ज्ञानसागर जी म.; अंग्रेजी अनवुाद- डॉ. बलजीत सिंह; वर्धमान कालिज बिजनौर; सम्पादक-डॉ. रमेशचंद्र जैन, बिजनौर तथा प्रा. निहालचंद्र जैन, अजमेर; प्रकाशक आ. ज्ञानसागर वागार्थ विमर्श केन्द्र, सेठ जी की नसियां; ब्यावर (अजमेर); प्रकाशन वर्ष-१९९७; पृ. -१५०; मूल्य रु. १००/-

पूज्य स्व. आचार्य श्री ज्ञानसागर जी (पूर्व पं. भूरामल जी) प्राचीन जैन वाङ्मय के प्रकाण्ड पंडित थे तथा संस्कृत भाषा के महाकवि थे। उन्होंने संस्कृत में कई महाकाव्यों, खण्डकाव्यों एवं अन्य कृतियों की रचना की थी। आदर्श शीलव्रत धारी एवं तद्भव मोक्ष गामी सेठ सुदर्शन के पुराण चरित पर आधारित सुदर्शनोदय महाकाव्य की ९ सर्गों में रचना उन्होंने सन् १९४३ में की थी। समीक्ष्य कृति में मूल संस्कृत रचना व उसके अंग्रेजी अनुवाद के अतिरिक्त विद्वान सम्पादकों ने आचार्य श्री की साहित्य साधना का भी सविस्तार परिचय प्रस्तुत किया है; अंग्रेजी अनुवाद भी उत्तम है। ग्रंथ संग्रहणीय है।

(५) **भाग्योदय महाकाव्यम्:** रचनाकार, सम्पादक व प्रकाशक वही; अंग्रेजी अनुवाद-डॉ. राजहंस गुप्ता, वर्धमान कालिज बिजनौर; प्रकाशन वर्ष १९९७; पृष्ठ ११४; मूल्य १००/-

आचार्य श्री की ब्रह्मचारी अवस्था में रचित 'सत्यमेव जयते' की उक्ति को चरितार्थ करने वाला यह लघु महाकाव्य (९ सर्गों में ३४४ श्लोकों में निवद्ध) श्रेष्ठि पुत्र भद्र मित्र के पौराणिक आख्यान पर आधारित है। आचार्य श्री की साहित्य साधना पर संपादकीय टिप्पणी सहित समीक्ष्य कृति संग्रहणीय है।

(६) **Path of Duty : An Enunciation (Part I):** सम्पादक व अनुवादक- प्राचार्य निहालचंद्र जैन; प्रकाशक- वही; प्र. वर्ष २०००; पृष्ठ ११५; मूल्य ५०/-

समीक्ष्य कृति में आचार्य श्री कृत "कर्तव्य पथ प्रदर्शन' का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। इस कृति में आचार्य श्री ने लघु कथाओं के माध्यम से एक सद्ग्रहस्थ को सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक दायित्वों में अपना कर्तव्य, किस प्रकार पालन करना चाहिए समझाया है। अनुवाद सुन्दर है, कृति संग्रहणीय है।

(७) **मानव धर्म (Humanity A Religion) :** ले. आचार्य श्री ज्ञानसागर जी (पूर्व पं. भूरामल जी); प्रकाशक- वही; अनु.- प्रा. श्री निहालचंद जैन; प्रकाशन वर्ष-१९९५; पृष्ठ-१०६; मूल्य रु. ४०/-

समीक्ष्य कृति में आचार्य समन्तभद्र कृत, श्रावकाचार के प्रमुख ग्रंथ रत्नकरण्ड श्रावकाचार की हिंदी टीका मानव धर्म का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। अनुवाद सुन्दर है। मूल रत्नकरण्ड श्रावकाचार सह अंग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है। ग्रंथ संग्रहणीय है।

(८) **History of Jainism:** सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचंद्र जैन की हिन्दी कृति 'जैन धर्म' के 'जैन धर्म का इतिहास' विषयक अध्याय का अंग्रेजी अनुवाद। अनुवादकर्ता- डॉ. श्रवण कुमार गुप्ता अलवर; सम्पादक- प्रा. श्री निहालचंद्र जैन; प्रकाशक- भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ, चौरासी, मथुरा; प्रकाशन वर्ष-१९९९; पृष्ठ-५४; मूल्य-४०/-

अनुवाद सुन्दर है । पुस्तक संग्रहणीय है।

(९) **ग्वालियर गौरव-गोपाचल :** ले.- श्री रामजीत जैन एडवोकेट प्रकाशक-श्री कैलाशचंद्र जैन चेरिटैबल सोसायटी द्वारा भावना अगरबती कटनी, निम्बालकर गेट नं. २, ग्वालियर, प्र. वर्ष-२००३, पृष्ठ ११६ मूल्य-५१/- रु.

ग्वालियर का किला जो इस देश की प्राचीनतम पर्वत श्रेणी विन्ध्याचल (प्राचीन विजयार्द्ध) पर्वत श्रेणी श्रृंखला की एक ३०० फुट ऊंची पहाड़ी पर निर्मित है भारत के प्राचीन दुर्गों में गिना जाता है तथा कुछ पुरातत्वविद इसे ईसा की तीसरी शताब्दी में निर्मित हुआ मानते हैं। इस किले के अंचल में गोपाचल गिरि पर सन् १३४१ से सन् १४७६ के बीच (तोमर वंश के शासन काल में) पर्वत को तराशकर बनाई गई उत्कृष्ट मूर्ति कला वाली दिगम्बर जैन मूर्तियों का समूह है। कुछ मूर्तियों को छोड़कर जो किसी चमत्कारवश बची रह गई प्रायः सभी मूर्तियों को दुर्ग के मुसलमान विजेताओं ने गजनी, अल्तमश तथा बाबर ने खंडित करा दिया था। यहां की भगवान पार्श्वनाथ की ४२ फुट ऊंची प्रतिमा विश्व की विशालतम पद्मासनस्थ मूर्ति मानी जाती है। मूर्ति के अतिशय के प्रभाव से आक्रमणकारी इसे तोड़ नहीं सके। गोपाचल पर्वत को २१वें तीर्थंकर भगवान नमिनाथ के तीर्थ में हुए सुप्रतिष्ठि केवली की निर्वाण भूमि भी माना जाता है। समीक्ष्य कृति जो सन् १९९६ में प्रथम बार प्रकाशित हुई थी उसका यह द्वितीय संस्करण बंधुवर रामजीत जैन एडवोकेट ग्वालियर ने दुर्ग के प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डालते हुए इस विशाल प्रतिमा के शिलालेख, जैन साहित्यकारों के योगदान तथा ग्वालियर नगर व निकटवर्ती क्षेत्रों के जैनायतनों का परिचय आदि देकर इस संस्करण का महत्व बढ़ा दिया है। विद्वान लेखक इतिहास ग्रंथों के सिद्धहस्त लेखक हैं तथा उन्होंने मुख्य रूप से मध्यप्रदेश में बसी जैन जातियों के कई क्षेत्रों के इतिहास से जैन वाङ्मय को समृद्ध किया है। विविध जानकारियों भरपूर से यह पुस्तक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

- अजित प्रसाद जैन

(१०) वीर पंचाशिका: रचनाकार श्री आसूलाल संचेती; प्र. मूलचंद सुजानमल उगमकंवर संचेती ट्रस्ट; अलका, डी/१२१, शास्त्री नगर, जोधपुर-३४२००३ (राज.); द्वितीय संस्करण २००१; पृ. ५०+६; मूल्य रु. २०/- (सजिल्द)

कृति रचनाकार श्री संचेती भारतीय राजस्व लेखा सेवा के अवकाश प्राप्त अधिकारी हैं और प्रबुद्ध चिन्तक एवं धर्मनिष्ठ श्रावक हैं। भगवान महावीर के २६००वें जयन्ती वर्ष में सरल-सुबोध भाषा में निबद्ध पचास पद्यों की इस कृति में उन्होंने श्री वीर भगवान की स्तुति के उपरान्त आजकल जैनियों की सुरक्षा एवं प्रगति के लिये भ. महावीर से मार्गदर्शन देने की प्रार्थना की है और तदनन्तर कवि-कल्पना से भ. महावीर की ओर से उत्तर देने का प्रयास, जैनधर्म के मूल सिद्धान्तों को इंगित करते हुए और उनके पालन की प्रेरणा देते हुए किया है, कवि समाज के श्रावक और

साधु दोनों वर्गों में व्याप्त विकृतियों, विशेषकर परिग्रह प्रवृत्ति, से चिन्तित हैं। उन्होंने सामाजिक विसंगतियों पर सशक्त चोट की है। साथ ही अपने काव्य-कथन की प्रस्तुति में यत्र-तत्र **सूत्र कृतांग, दशवैकालिक सूत्र, तत्वार्थसूत्र** और उस पर पूज्यपाद स्वामी की **सर्वार्थसिद्धि टीका, भक्तामर स्तोत्र, चतुर्विंशतिस्तव, समणसुत्तं,** इत्यादि प्रख्यात ग्रंथों में आई उक्तियों का उपयोग किया है।

समग्रतः यह कृति पठनीय और मननीय है। इसके लिये रचनाकार साधुवाद के पात्र हैं।

(११) श्री दिगम्बर जैन बुढ़ेलवाल समाज का इतिहासः लेखक श्री रामजीत जैन (एडवोकेट); निर्देशक-सम्पादक-प्रकाशक श्री शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी; प्राप्ति स्थल- भ. ऋषभदेव कल्याण कोष, सीताराम मार्केट, मैनपुरी २०५००१ (उ.प्र.); प्र. जून, २००३; पृ. १६२+कवर+सचित्र; मूल्य रु. ५१/-

दिगम्बर जैन समाज की वरैया, जैसवाल, खरौआ, विजयवर्गीय, गोलालारे आदि विभिन्न जातियों का इतिहास लिखने वाले, अनेक कृतियों के प्रणेता, वयोवृद्ध विद्वान श्री रामजीत जी ने मुख्यतः उत्तर प्रदेश के जनपद मैनपुरी, एटा, फर्रूखाबाद और इटावा में बसने वाले बुढेलवाल जैन समाज का इतिहास प्रस्तुत पुस्तक में प्रस्तुत किया है। कृति दो खण्डों में है। प्रथम खण्ड में जातीय इतिहास की पूर्वपीठिका, जाति संरचना, इतिहास संस्कृति का तारतम्य एवं प्रेम, बुढ़ेलवालों की उत्पत्ति, गोत्र विचार, इनका निवास, इनके रीति रिवाज, उपलब्धियों, जनसंख्या और इनकी वर्गीकृत विशिष्टताओं आदि पर प्रकाश डाला गया है। और द्वितीय खण्ड में इस समाज के तीन त्यागीजन और ६६ अन्य विशिष्ट व्यक्तियों का परिचय दिया गया है। बुढेलवाल समाज के लोगों के लिये तो यह पुस्तक पठनीय और प्रेरणाप्रद है ही, जातियों का इतिहास जाननेवालों के लिये भी यह ज्ञानवर्द्धक है। संयोग से अपना विवाह जसवन्तनगर (इटावा) के स्व. सेठ सुदर्शनलाल जैन की पौत्री और स्व. श्री नरेन्द्रभूषण जैन वस्त्र-व्यवसायी की आत्मजा आशा से हुआ होने के कारण इस पुस्तक में अनेक परिचितों का परिचय पढ़ मन आह्लादित हुआ।

(१२) सिन्दूर प्रकरः रचनाकार शतार्थिक श्री सोमप्रभसूरीश्वर; हिन्दी पद्य अनुवाद- आचार्य श्रीमद् विजय यतीन्द्र सूरीश्वर म.सा.; संकलन-आचार्य श्रीमद् विजय जयन्तसेन सूरीश्वर म.सा 'मधुकर'; प्र. श्री राज राजेन्द्र प्रकाशन ट्रस्ट, शेखनो पाडो, रिलीफ रोड, अहमदाबाद-३८०००४; प्र. वर्ष २००२ ई.; पृ. १२६+६; मूल्य रु. १५/-

विवेच्य कृति एक सुभाषित ग्रन्थ है जिसमें प्रांजल संस्कृत भाषा में विभिन्न वृतों में विविध विषयक सूक्तियों की मुक्तावली पिरोई गई है। चूंकि कृति का प्रारंभ 'सिन्दूरप्रकर' शब्द से हुआ है, यह कृति 'सिन्दूरप्रकर' नाम से प्रख्यात है। और सौ श्लोक होने से 'सोमशतक' भी कहलाती है। इसके रचयिता सोमप्रभसूरि विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभ में प्राग्वाट ज्ञातीय जैन महाजन वंश में जन्मे थे। सोमप्रभसूरि के **कुमारपालप्रतिबोध, शतार्थकाव्य, श्रृंगारवैराग्यतरंगिणी** और श्री **सुमतिनाथ चरित्र** की रचना का भी श्रेय है। **शतार्थकाव्य** की रचना के कारण वह 'शतार्थिक' विरुद से प्रख्यात हुए।

कृति में समाहित श्लोकों के अन्वय, टीका, हिन्दी गद्य में भावार्थ और सुललित पद्यानुवाद ने कृति को सुबोध बना दिया है। साथ ही अन्यत्र प्राप्त सूक्तियों को प्रकरणवार संजोकर कृति की चारुता में चार चांद लगा दिये गये हैं।

(१३) Mystic India: Tantra Special (Nov. 2003): Editor-in-chief & Publisher- Mr. Suneel Babel; Editor Mr. Ashok Sahajnand; Registered Office D-65, Gulmohar Park, Gr. Floor, New Delhi-110049; PP. 68; Subscription Rs. 35/- .

This bi. -monthly magazine mainly deals with various mysteries prevaling in human life, human psychology and the nature surrounding us, and provide intellectual food to its readers. The present issue is earmared for Tantra, one of the pet topics for those interested in occult, i.e., supernatural phenomenon. It contains 16 articles. The attraction of the issue lies in thought provoking article of Dr. Shashi Kant's 'What, Why and How of Existence' and in Dr. R. K. Jain's paper. The Might and Glory of Great Namokar, The editor and the Pullisher both deserve congratulations for bringing out such a nice issue.

(१४) बुद्ध-हृदय (महात्मा बुद्ध की डायरी): रचनाकार- स्वामी सत्यभक्त; सम्पादक- श्री जमनालाल जैन; प्राप्ति स्थान-जैन बुक सेंटर, अभयकुटीर, सारनाथ (वाराणसी) २२१००४; चतुर्थ संस्करण २००३; पृ. ६६; मूल्य रु. २५/-

प्रस्तुत कृति का प्रणयन क्रांतिकारी चिन्तक स्वामी सत्यभक्त (पं. दरबारीलाल 'सत्यभक्त') ने अबसे लगभग ६२ वर्ष पूर्व किया था। स्वामी जी ने बौद्ध साहित्य, विशेषकर बौद्ध-पिटक, के अध्ययन से महात्मा बुद्ध को जाना-समझा। उनके मन में

यह जानने का कुतुहल बना हुआ था कि ईसा पूर्व छठी शती में भारत में उत्पन्न एक क्षत्रिय राजकुमार, जो कपिलवस्तु नरेश शाक्यवंशी शुद्धोदन का पुत्र सिद्धार्थ गौतम था, के मन में युवावस्था में, सुन्दर पत्नी और अबोध पुत्र को चुपचाप सोता छोड़ घर त्यागते समय और तदनन्तर गृह-निष्क्रमण से लेकर महानिर्वाण पर्यन्त जीवन-यात्रा में आये विभिन्न पड़ावों-विभिन्न घटनाओं, प्रसंगों और अवसरों-पर प्रतिक्रियास्वरूप किस प्रकार की हलचल होती रही होगी। एक कुशल मनोवैज्ञानिक की भांति उन हृदयंगत हलचलों का निरूपण करने हेतु उन्होंने अपने कल्पनारूपी कैमरे को बुद्ध के हृदय-पटल पर फिट कर उनके जीवन, विचारों और उनके धर्म का एक प्रिंट आउट, डायरी विधा में, उनकी आत्मकथा के रूप में सरल-सुबोध भाषा और रोचक शैली में प्रस्तुत पुस्तिका में शब्दांकित कर दिया। यह कृति इतनी लोकप्रिय हुई कि स्वामी जी के जीवनकाल में इसके तीन संस्करण हिन्दी में प्रकाशित हुए। साथ ही बर्मी, नेपाली और तेलुगु भाषाओं में इसका अनुवाद प्रकाशित हुआ। बौद्ध जगत के साथ-साथ सामान्य पाठकों के लिये भी रोचक इस 'बुद्ध हृदय' का श्री जमनालाल जी द्वारा सम्पादित हिन्दी में यह चौथा संस्करण अब प्रकाशित हुआ है, जिसके लिये प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

(१५) प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्तः लेखक-डॉ. भालचंद्र नेटके; सम्पादक श्री जमनालाल जैन; प्र. श्री मूलचंद बड़जाते, अनेकान्त स्वाध्याय मंदिर (पानी टंकी के पास), रामनगर, वर्धा (महाराष्ट्र); प्राप्ति स्थान जैन बुक सेन्टर, अभय कुटीर, सारनाथ, वाराणसी-२२१००४; पृ. ४८; मूल्य रु. १०/-

लोगों में दिनोंदिन प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति बढ़ते रूझान को लक्ष्यकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी ६५ वर्षीय डॉ. नेटके, जो होम्योपैथिक चिकित्सक और प्राकृतिक चिकित्सा के अनन्य प्रेमी भी हैं, ने प्रस्तुत लघु पुस्तिका में प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धांतों और उपचारों को सरल-सुबोध भाषा में संक्षेप में निरूपित किया है। आर्थिक भार से ग्रस्त आमजन को व्यय साध्य चिकित्सा पद्धतियों के शिकंजे से मुक्तकर सरल सस्ती प्राकृतिक चिकित्सा का उपाय बताने वाली इस जनोपयोगी पुस्तक के लेखक, सम्पादक और प्रकाशक साधुवाद के पात्र हैं।

- रमा कान्त जैन

समाचार विविधा

बिलहरी में भूगर्भ से प्राप्त तीर्थंकर मूर्तियां

महाराज कर्ण के महल सहित अनेक पुरातात्विक महत्व की सामग्री अपने आंचल में समेटे ग्राम बिलहरी, जिला कटनी (मध्य प्रदेश), भूगर्भ से प्राप्त जैन तीर्थंकर मूर्तियों के कारण चर्चा में है। इस ग्राम में तीन प्राचीन जिन मंदिर हैं जबकि जैन परिवार वर्तमान में केवल चार ही हैं। यहां के श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर में जब परकोटे को विस्तार देने हेतु एक जीर्ण शीर्ण दीवाल को हटाया गया तो जमीन में आधी फंसी हुई मूर्तियां दिखाई दीं। मंदिर प्रबंधकों ने बड़ी सावधानी से मूर्तियों को बाहर निकलवाया। एक-एक कर जब मूर्तियां बाहर निकाली गईं तो १४ मूर्तियां अपनी मूल अवस्था में प्राप्त हुईं। बताते हैं कि ये मूर्तियां पंक्तिबद्ध रूप में इस प्रकार रखी हुई थीं मानो दीवार में चुनवा दी गई हों। प्राप्त मूर्तियों में एक भगवान आदिनाथ की लगभग ४-५ फुट ऊंची मूर्ति, भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति, खड्गासन युगल तीर्थंकर मूर्ति, समवशरण सहित तीर्थंकर मूर्ति और सिद्ध भगवान की मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सभी मूर्तियां फिलहाल मंदिर-परकोटे में रख दी गई हैं। निकट भविष्य में इनकी प्रतिष्ठा किये जाने की योजना है। मंदिर में भूगर्भ से प्राप्त ये मूर्तियां इस बात का संकेत देती हैं कि अतीत में बिलहरी ग्राम एक अच्छा जैन केन्द्र रहा होगा और इसके भूगर्भ में जैन पुरा सम्पदा अभी भी समायी हो सकती है।

सुश्री 'गोवैज डॉट कॉम'

अमेरिका में वर्जीनिया के बारफोल्क में रहने वाली २३ वर्षीय कैरीन राबर्टसन जानवरों के हितों से सम्बंधित संस्था 'पीटा' में कार्यरत हैं। उन्होंने उक्त संस्था की एक वेबसाइट के आधार पर अपना नाम 'गो वैज डॉट कॉम' रखा है ताकि यह नाम सुनते ही लोगों का ध्यान शाकाहार तथा जानवरों के हितों की ओर जाये और वे उनसे जानवरों के प्रति व्यवहार और पौध संरक्षण पर बातचीत करें।

जैन मुनि द्वारा कैलाश-मानसरोवर यात्रा

श्री रूपचंद्र जी महाराज पहले जैन मुनि हैं जिन्होंने भानुपुरा पीठ के शंकराचार्य स्वामी दिव्यानन्द तीर्थ व परमार्थ आश्रम के प्रमुख श्री चिदानंद सरस्वती आदि अन्य संतों के साथ मानसरोवर यात्रा की और भगवान ऋषभदेव की निर्वाणभूमि कैलाश (अष्टापद) की हिमाच्छादित चूलिकाओं पर जैन ध्वज लहराया तथा वहां भक्तामर

स्तोत्र द्वारा भगवान की वंदना की। यात्रीदल में सम्मिलित लंदन से पधारी सुश्री धीरज पुनिता बेन शाह तथा भावना जैन आदि ने भी आदिनाथ प्रभु की निर्वाणस्थली पर आरती की।

श्रावकाचार संगोष्ठी

जयपुर में १४ से १७ अगस्त, २००३ तक एक चार दिवसीय श्रावकाचार संगोष्ठी डॉ. हुकमचंद भारिल्ल की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई जिसमें देश के अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों ने भाग लिया।

पद्मपुराण पर राष्ट्रिय विद्वत् संगोष्ठी

केकड़ी (अजमेर) में मुनि श्री सुधासागर महाराज के सान्निध्य में ७ से ६ अक्टूबर को एक त्रिदिवसीय राष्ट्रिय संगोष्ठी आचार्य रविषेणकृत **पद्मपुराण** के परिशीलनार्थ सम्पन्न हुई। इस संगोष्ठी में देश के विभिन्न भागों से पधारे विद्वानों ने आठ सत्रों में ३४ शोधपत्रों का वाचन किया। संगोष्ठी के संयोजक डॉ. विजय कुमार जैन, लखनऊ थे।

–रमा कान्त जैन

वीरता पुरस्कार

सहारनपुर की लार्ड महावीर एकेडेमी इण्टर कालेज की प्रधानाध्यापिका **श्रीमती मंजू जैन** को, उनके कालेज की ही एक महिला कर्मचारी के अग्नि से दुर्घटनाग्रस्त होने पर, उसे बहादुरीपूर्वक बचाने के लिए उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष श्री केशरीनाथ त्रिपाठी ने **'रेड एंड व्हाइट वीरता पुरस्कार'** से दिनांक २२ अक्टूबर को लखनऊ में सम्मानित किया। उल्लेखनीय है कि यह श्रीमती मंजू जैन की कार्यकुशलता एवं लगन का ही फल है कि वह अल्प समय में ही इस छोटे से विद्यालय को, समर्पित एवं कुशल प्रबंध तंत्र के निर्देशन में, शहर के अग्रणी इंग्लिश मीडियम इंटर कालेज के रूप में स्थापित करने में सफल हुई। उन्हें शोधादर्श परिवार की बहुत-बहुत बधाई !

– सीमा जैन

अभिनन्दन

ब्र. मीना जैन (ललितपुर) को उनके शोध-प्रबंध **'आचार्य ज्ञानसागर के साहित्य में पर्यावरण'** पर तथा **कु. नीता जैन (ललितपुर)** को उनके शोध-प्रबन्ध **'आचार्य ज्ञानसागर के साहित्य में प्रतिपादित भारतीय संस्कृति'** पर रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

डॉ. (श्रीमती) मधु जैन (लखनऊ) को उनके शोध-प्रबन्ध **'ईसाई धर्मावलम्बी लेखकों का हिन्दी में योगदान'** पर लखनऊ विश्वविद्यालय ने डी. लिट्. उपाधि प्रदान की।

डॉ. सत्यव्रत शास्त्री, को कुन्दकुन्द भारती न्यास, नई दिल्ली द्वारा 'आचार्य उमास्वामी पुरस्कार' संस्कृत भाषा और साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान हेतु प्रदान किया गया।

उत्कल विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर में भारत सरकार के संस्कृति विभाग के आर्थिक सहयोग से संस्थापित 'जैन चेयर' के अध्यक्ष **डॉ. लालचंद्र जैन (वैशाली)** बनाये गये।

डॉ. रुक्माजी राव 'अमर' (चेन्नई) को हैदराबाद में 'आचार्य आनन्द ऋषि साहित्य पुरस्कार २००३' प्रदान किया गया।

प्रो. पी. सी. जैन को हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा वर्ष २००२-२००३ के लिये विशिष्ट कृति सम्मान दिया गया।

प्रख्यात संगीतकार **श्री रवीन्द्र जैन** महाराष्ट्र सरकार के प्रतिष्ठित 'लता मंगेशकर पुरस्कार' के लिये चुने गये।

डॉ. हुकमचंद भारिल्ल (जयपुर) श्री अ. भा. दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद के नये अध्यक्ष चुने गये।

डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा (कोलकाता) को उनके द्वारा किये जा रहे अहिंसा के कार्यों हेतु कुण्डलपुर में **जम्बुदीप पुरस्कार** से सम्मानित किया गया।

उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धियों के लिये **शोधादर्श** परिवार अभिनंदन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना अर्पित करता है।

शोक संवेदन

११ अगस्त, २००३ को विजयवाड़ा में वयोवृद्ध समतामूर्ति मुनिराज **अरिहंत विजयजी** म.सा. का समाधिमरण हो गया।

१३ अगस्त को सागर में परोपकारी एवं धार्मिक प्रवृति के समाजसेवी **श्रीमंत सेठ शिखरचंद जैन** का असामयिक निधन हो गया। वह पूर्व सांसद एवं अ.भा. दिगम्बर जैन परिषद के पूर्व अध्यक्ष श्रीमंत सेठ डालचंद जैन के अनुज थे।

१६ सितम्बर को दिल्ली में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., के सदस्य तथा 'वीर' पत्रिका (दिल्ली) के सह सम्पादक **श्री सुन्दरसिंह जैन** का निधन हो गया।

२२ सितम्बर को जयपुर में राजस्थान के राज्यपाल, विधिवेत्ता ७५ वर्षीय **श्री निर्मलचंद जैन** का दिल का दौरा पड़ने से अकस्मात निधन हो गया।

उपर्युल्लिखित सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति **शोधादर्श** परिवार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिरशान्ति और सद्‌गति के लिये जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करता है, और शोक संतप्त उनके स्वजनों-परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

आभार

१. जस्टिस एम. एल. जैन, बी - ३, श्रीराम मार्ग, श्यामनगर, जयपुर ने **शोधादर्श** को २,५००/- विशेष सहायता के रूप में प्रदान किये।

२. श्रीमंत सेठ भगवानदास शोभालाल जैन परिवार, सागर की ओर से श्रीमंत सेठ शिखरचंद की पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** हेतु रु. ५०१/- सहायतार्थ प्रदान किए गए।

३. डॉ. महावीर प्रसाद जैन, डी-११/६, राजेन्द्रनगर, लखनऊ ने १६ अक्टूबर को अपने ८०वें वर्ष प्रवेश के उपलक्ष्य में आत्म स्मृति में **शोधादर्श** को रु. १०१/- प्रदान किये।

४. श्री अजित प्रसाद जैन, महामंत्री, ती. म. स्मृति केन्द्र समिति, उ.प्र., ने दिनांक ४.६.०३ को अपने पूज्य पिताजी श्री पारसदास जी की ४७वीं पुण्यतिथि तथा दिनांक २१.८.०३ को अपने ज्येष्ठ पुत्र प्रिय सूर्यकांत की प्रथम पुण्यतिथि पर उनकी स्मृति में **शोधादर्श** को रु. ५०/- तथा **शोध पुस्तकालय** को रु. ५०/- सहायतार्थ प्रदान किये।

पाठकों के पत्र

शोधादर्श (नवम्बर २००२) में गुरुगुण-कीर्तन के अन्तर्गत कविवर बनारसीदास पर शोधपूर्ण आलेख उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों को उजागर करता है। वीर जन्मस्थली कुण्डलपुर के संदर्भ में छिड़े हुए विवाद पर आदरणीय अजितप्रसाद जी का विश्लेषण ऐतिहासिक एवं भौगोलिक पृष्ठभूमि पर तार्किक एवं गवेषणात्मक विवेचन है। रमाकान्त जी की क्षणिकाएं नाविक के तीर की तरह देखने में छोटी होने पर भी गहरा घाव करती हैं। डॉ. प्रचण्डिया जी का आध्यात्मिक गीत मोह निद्रा में बेसुध व्यक्ति के लिये सशक्त उद्‌बोधन है। अन्य सभी आलेख विद्वत्तापूर्ण हैं। अंक संग्रहणीय है।

- डॉ० मालती जैन, मैनपुरी

शोधादर्श-५० में तीर्थंकर पार्श्वनाथ पर सम्पादकीय लेख ज्ञानवर्द्धक है। 'तथाकथित मल्लिकुमार मूर्ति' लेख thought provoking है। सदैव की भांति **शोधादर्श** अत्यन्त पठनीय और ज्ञानवर्द्धक है।

- शान्तिप्रकाश जैन, पल्लवपुरम्, मेरठ

The Contents of the Journal Shodhadarsha are wide, useful, informative and help the students and researchers in their academic pursuits.

- Prof. R. C. Sharma, Varanasi

शोधादर्श-५० प्राप्त हुआ। गुरुगुण-कीर्तन लेख पढ़कर सन्तोष प्राप्त होता है। सदैव उत्तम रहता है। अन्य लेख भी ज्ञानवर्द्धक रहते हैं।

डॉ० शशिकान्त को 'मैन ऑफ द इयर' सम्मान हेतु नामित किया गया, ज्ञातकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। **- राजदुलारी जैन, कानपुर**

मैं तो शोधादर्श पूरा पढ़ता हूँ। आपने अपने सम्पादकीय में भगवान पार्श्वनाथ को जो उग्रवंशीय बताया है और यह कि वैश्य अग्रवाल उन्हीं के वंशज हैं, यह खोज सराहनीय है। वैश्य अग्रवाल जैनों को नयी दिशा इस खोज से मिली है। हस्तिनापुर की यात्रा लेख भी पढ़ा। **- जयप्रकाश जैन, मेरठ**

शोधादर्श-५० में तीन लेख- 'गुरुवर चैनसुखदास", भगवान महावीर और महात्मा गांधी' तथा 'अकबर और जैनधर्म' बहुत ही सुन्दर लिखे गये हैं। प्राचीन इतिहास की जानकारी बहुत कम लोगों को होती है। इन लेखों में काफी परिश्रम करके जो सामग्री प्रस्तुत की गई है, वह नई पीढ़ी के लिये वरदान है।

-शान्तीलाल जैन बैनाड़ा, आगरा

शोधादर्श-५० कल करगत किया। श्री रमाकान्त द्वारा रचित 'गुरुगुण-कीर्तन गुरुवर चैनसुखदास' ने मुझे कई स्थलों पर पंडित प्रवर चैनसुखदास को स्मरण करने पर मजबूर कर दिया। पंडितजी की अक्खड़ता प्रियवर सत्यंधर कुमार सेठी जैसे उनके प्रिय शिष्यों में अंत तक चिरंजीवी रही। अपने महाविद्यालय में उन्होंने मेरा प्रवचन कराया था। वे गजब के गुणग्राही भी थे।

शोधादर्श की आवाज बुलन्द हो, यही मंगल कामना है।

- डॉ० महेन्द्रसागर प्रचण्डिया, अलीगढ़

आज शोधादर्श-५० प्राप्त हुआ। तुरन्त पढ़ना प्रारंभ किया। 'तथाकथित मल्लिकुमारी मूर्ति' लेख अच्छा लगा। कितना स्पष्ट, तथ्य से भरपूर, निष्पक्ष और संयत भाषा में है। 'शुचिता-सौम्यता-भव्यता' लेख भी पसन्द आया। पृष्ठ ७३ पर अहिंसा इन्टरनेशनल द्वारा आपका सम्मान किया जा रहा है उसकी तस्वीर देखकर प्रसन्नता हुई।

- गीता जैन, मुम्बई

शोधादर्श (जुलाई २००३ अंक) में प्रकाशित प्रायः सम्पूर्ण सामग्री पर्याप्त विचारोत्तेजक है, श्रेष्ठत्व की ओर अग्रसर होने के लिये प्रेरक तो है ही। तीर्थंकर पार्श्वनाथ पर सम्पादकीय चिन्तन के नये आयाम लिये हुए है। डॉ. श्रीरंजनसूरिदेव की प्रस्तुति में उनका गहन अध्ययन मुखर है। शोध की अनन्त संभावनाएं लिये हुए उनका यह लेख मेरी दृष्टि में प्रस्तुत अंक का मुख्य आकर्षण है। 'भगवान महावीर और गांधी' शीर्षक लेख की ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में प्रस्तुति सर्वथा स्वागत-योग्य है। इसमें धर्म के मर्म को व्याख्यायित करने का सुन्दर प्रयास है। चिन्तन कण- 'धर्म-अधर्म' तथा 'जीव का भी मरण होता है' न केवल पठनीय हैं वरन् मननीय भी हैं। कविताओं में श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध' के हाइकु 'शान्ति के दूत त्रिशला पूत' तथा श्री रमाकान्त की क्षणिकाएं पर्याप्त प्रभावी हैं। पुस्तक समीक्षाएं ज्ञानवर्धक तथा उपयोगी हैं।

- डॉ. गणेशदत्त सारस्वत, सम्पादक 'मानस चन्दन', सीतापुर

आपकी पत्रिका शोधादर्श शोध करने वाले बन्धुओं के लिये अत्यन्त उपयोगी है। धर्म का मर्म यदि चाहिये तो आपकी पत्रिका सोने में सुहागा है।

-मिट्ठूलाल डाग, सम्पादक 'ओसवाल महिमा' जोधपुर

शोधादर्श-५० आद्योपान्त अवलोकित कर अत्यन्त आनन्दानुभूति हुई। अंक के विशेष आकर्षण-तीर्थंकर पार्श्वनाथ पर आपका चिन्तनपूर्ण सम्पादकीय, डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव का 'वैशाली : महावीर युग में', बा. ज्योति प्रसाद देवबन्दी का 'भगवान महावीर और महात्मा गांधी' तथा श्री रमाकान्त जैन का 'अकबर और जैन धर्म' महत्वपूर्ण लेख हैं। गुरुगुण-कीर्तन के अन्तर्गत 'गुरुवर चैनसुखदास' पर उनका लेख परम प्रेरणा प्रदायक है।

हस्तिनापुर क्षेत्र की यात्रा लेख में कैलाश को अष्टापद गिरि आपका कहना समीचीन है, क्योंकि मेघदूत काव्य के श्लोक ११, ६१, ६२ और ६७ में कवि कालीदास ने कैलाश को सन्दर्भित कर वहां 'शरभ' नामक मृग के मेघमार्ग में आने का वर्णन किया है जिसे सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ ने 'अष्टापद मृग विशेष' रूप में व्याख्यायित किया है। अतः अष्टापद कैलाश का ही व्यंजक शब्द है।

- डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी, अजीतमल (औरय्या)

शोधादर्श-५० मिला। उसमें श्री रमाकान्त का लेख 'अकबर और जैनधर्म' अच्छी शोधसामग्री से ओतप्रोत है। अकबर के दरबार में युगप्रधान श्रीचन्द्र सूरीश्वर जी के विद्वान शिष्य महोपाध्याय कवि श्री समयसुन्दर जी ने अकबर बादशाह के कहने से 'अष्टलक्ष्यी' ग्रन्थ रचा था।

- हजारीमल बांठिया, कानपुर

शोधादर्श-५० के प्रारंभ में गुरुगुण-कीर्तन के अन्तर्गत गुरुवर चैनसुखदास के सरल-सादा जीवन का लेखा जोखा पढ़कर भावविभोर हुआ। पृष्ठ ४१-४२ पर भाई अजितप्रसाद जी की हस्तिनापुर तीर्थ की यात्रा का वर्णन और पृष्ठ ७३-७४ पर उनके अभिनन्दन का समाचार भी आह्लादकारी रहे।

- आनन्दप्रकाश जैन, हस्तिनापुर

श्री एम. एल. जैन की मुनियों के बारे में टिप्पणी तीखी भले ही लगे लेकिन कम से कम कुछ मुनियों का आचरण इन टिप्पणियों के अनुकूल लगता है। मुनियों का एक समूह तो स्वयं को कुन्दकुन्दाचार्य की परम्परा से भिन्न समझा जाने का आग्रह कर रहा है और मंगलाचरण से उनका नाम हटाने लग गया है। कुछ लोगों के विपरीत आचरण से समाज उद्वेलित हो जाता है, धर्म नहीं।

मुनियों के आशीर्वाद से प्रकाशित अनेक आत्मप्रशंसा में लीन पत्रिकाओं के मध्य शोधादर्श दीपकों के मध्य अखण्ड ज्योति की तरह प्रतीत हुई। लगा जैसे कोई

है, जो जैन दर्शन के वास्तविक स्वरूप को दिखाना चाह रहा है। चाहता हूं यह ज्योति जलती ही रहे, हमारा अन्तर्मन प्रकाशित रखने में सहायक बने।

- अशोक जैन, तिजारा

शोधादर्श निरन्तर मिल रहा हैं। उसका प्रत्येक अंक नवजागरण हेतु गुदगुदी पैदा करता है। यही इसकी तटस्थता का प्रमाण है। सच तो गरिष्ठ होता ही है।

- डॉ. ऋषभचन्द्र जैन, वैशाली

शोधादर्श-५० में लखनऊ म्यूजियम की जे-२८८ मल्लिकुमारी मूर्ति के बारे में जैन सन्देश (शोधांक) जून १६७६ की सामग्री यादकर उचित समय पर लेख प्रकाशित करना किसी शोध से कम नहीं है। गुरुवर चैनसुखदास के बारे में पढ़कर उपराष्ट्रपति भैरोसिंह शेखावत जी, जो उन्हीं के गांव के हैं और उनके घनिष्ठ रहे हैं, से सुने संस्मरण याद हो आये। महावीर-महात्मा गांधी विषयक जून १६३० में जब्त हुआ लेख हमारी आंखें खोलता है और बा. ज्योति प्रसाद (देवबन्दी) की प्रज्ञा से रूबरू कराता है। 'अकबर और जैन धर्म' उपयोगी आलेख है। ऐसे शोधपूर्ण आलेख के लिये रमाकान्त जी को बधाई। उनकी क्षणिकाएं चुटकी लेती हैं। ब्र. सीतलप्रसाद जी की १४-१-२७ की गज़ल हितोपदेशी है। शोधादर्श की पत्रिकारिता स्तुत्य है, निर्भीकता सुविख्यात है।

- डॉ. अभयप्रकाश जैन, ग्वालियर

शोधादर्श-५० में मेरे पत्र के उत्तर में आपके स्पष्टीकरण से मेरी बहुत बड़ी समस्या का समाधान हुआ। दस वर्ष पूर्व मुझे किसी गुटके से हरिपालकृत (सं. १३४१) प्राकृत भाषा में दो आयुर्वेदीय रचनाएं-**प्राकृत वैद्यक** और **योग विधान** मिली थीं जिनमें 'महुए' (शहद) का प्रयोग बहुलता से होने के कारण कोई भी जैन पत्रिका छापने को तैयार न थी। जैसे तैसे 'श्रमण' (वाराणसी) ने उसे छापा और लोग इन अज्ञात रचनाओं को पढ़कर विस्मित हुए। अब उनके हिन्दी अनुवाद का प्रयास चल रहा है। अब 'महुए' शब्द से 'शहद' की जगह 'महुआ का रस' अर्थ प्रयुक्त हो सकता है। महुआ बुन्देलखण्ड का विशिष्ट वृक्ष है जो दो फसलें देता है-महुआ और गुली जिसका तेल निकलता है। आदिवासी लोग उससे नाना व्यंजन पकाते हैं तथा सुखाकर रख लेते हैं। उसे मेवा कहा जाता है।

- प्रा. कुन्दनलाल जैन, शाहदरा (दिल्ली)

'तथाकथित मल्लिकुमारी मूर्ति' लेख का पुनर्प्रकाशन समयोचित है। 'तीर्थंकर पार्श्वनाथ' लेख समग्रतः विचारोत्तेजक है। श्री रमाकान्त का लेख 'अकबर और जैन

धर्म' अतिशय उपयुक्त है और सम्राट अकबर की सहिष्णुता तथा जैन धर्म के प्रति उदारता का परिचायक है। 'धर्म का मूल-सम्यग्दर्शन' में श्री ओम पारदर्शी ने सम्यक्त्व का जो स्वरूप बतलाया, वह व्यवहार नय से सही है। 'जीव का भी मरण होता है' (चिन्तन कण २) में जीव और आत्मा में भेद दिखाया है। वास्तव में 'आत्मा' शब्द 'स्वयं' के अर्थ में आता है। सही रूप में देखा जाय तो न तो जीव मरता है, न शरीर मरता है, परन्तु शरीर के वियोग होने पर यह जीव मिथ्या भ्रान्ति से दुखी होता है। शरीर और आत्मा का वियोग ही मरण है और मिलन ही जन्म है।

- मनोहर मारवडकर, नागपुर

शोधादर्श-५० में श्री रमाकान्त जैन द्वारा 'गुरुगुण-कीर्तन' में लिखित गुरुवर चैनसुखदास की जीवनी बड़ी रोचक लगी। उन्हीं के आलेख 'अकबर और जैनधर्म' में जो विभिन्न ग्रन्थों को कोट किया गया है उनका यदि सन्दर्भ भी होता तो यह और भी प्रामाणिक होता। डॉ. श्रीरंजनसूरिदेव के लेख में वैशाली के विभिन्न साहित्यिक एवं ऐतिहासिक पक्षों को उजागर किया गयाा है। सम्पादकीय में तीर्थंकर पार्श्वनाथ के बारे में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में मौलिक चिन्तन है। 'भगवान महावीर और महात्मा गांधी' लेख में जैन समाज को दी गई चेतावनी आज भी प्रासंगिक है। अंक संग्रहणीय है।

- रजनीश शुक्ला, उदयपुर

शोधादर्श (नवम्बर २००२) में आपने आचार्य पुष्पदंतसागर जी की चर्चा की है, उनका इन दिनों मुम्बई के गुलालबाड़ी मंदिर में चातुर्मास हो रहा है। जिस दिन चातुर्मास कलश की स्थापना हो रही थी, गुरुपूर्णिमा थी। मैं दर्शनार्थ पास पहुंचा। उनके कर्मकांड देखकर दंग रह गया। हिंदू मंदिरों के पंडे पुजारी जैसा करते हैं, उससे भी भयानक। सभी लोगों को कुंकुम रोली-गोल्डन रोली का टीका लगाना, मिष्ठान्न का प्रसाद अपने हाथ से लोगों को (महिलाएं भी शामिल हैं) बांटना, आधा मिष्ठान्न कबाट में रख लेना, उनके अपने चित्र के बालपैन वितरित करना-पंडों जैसा आचरण, मैंने उनका विरोध किया। कहने लगे "श्रद्धा भक्ति की बात है, श्रावक दे जाते हैं।" मैंने उनसे विनम्रतापूर्वक कहा "दिगम्बर मुनि को यह शोभा नहीं देता। फिर वैदिक कर्मकांड और जैन कर्मकांड में अन्तर ही क्या रह गया?" उनके पास उत्तर नहीं था। कहने लगे "जाओ-जाओ"। निकलते निकलते मैंने कहा "कि जैनधर्म का ह्रास हो रहा है आप जैसे साधुओं से। यहां तो श्रावकों को जाग्रत करने की आवश्यकता

है। वे उनकी गलत इच्छाओं को पूरी न करें।" बीसपंथ के नाम पर ये ढकोसलें। ट्रस्टीगण भी राजनेताओं को आयोजन में बुलाकर अपना व्यक्तिगत लाभ लेते हैं।

– देवेन्द्र जैन, कालवा देवी रोड, मुम्बई

शोधादर्श ४८ के सम्पादकीय में आपने व्यंगात्मक भाषा में ब्याज स्तुति युक्त पूरा निबन्ध जो लिखा है, उसके भाव किसी भी प्रकार से गलत नहीं हैं। बड़े ही संयत ढंग से आपने व्यक्ति को जाग्रत होने का संदेश दिया है। इसकी रचना शैली अपने आपमें एक विशिष्ट शैली है। आपने जीवन में ज्ञानाराधना बहुत ही सुन्दर की है। ऐसा **शोधादर्श** से ज्ञात होता है।

इसी अंक में श्री जमनालाल जैन (सारनाथ) का लेख एकान्त पक्षी है, सुविचारकता का नहीं है। **– एक पू. मुनि जी**

शोधादर्श ४६ में प्रकाशित मेरी टिप्पणी पर कुछ पाठकों ने आपत्ति की है, उसका जवाब आपने शोधादर्श-५० में दे ही दिया है। मैं भी इस विषय में कुछ और लिखने की सोच ही रहा था कि पावन पर्यूषण पर्व आ गया और अब मैं किसी विवाद में नहीं पड़ना चाहता, अतः **पार्श्व ज्योति** के सम्पादक व श्री रोहित कुमार जैन व अन्य तमाम महानुभाव जिनको मेरी टिप्पणी से आघात पहुंचा है उनसे मैं विनम्रता पूर्वक क्षमा याचना करता हूं, साथ ही वे महानुभाव अनगार धर्म की गिरती मर्यादाओं को नज़र अंदाज न करें तो अच्छा है, कहीं आदर्श व कठिन दिगम्बरत्व महज नाग्न्य परीषहमात्र बनकर न रह जाय, इसका ध्यान रहे।

शोधादर्श-५० में भाई रमाकान्त के लेख 'गुरुवर चैन सुखदास' तथा 'अकबर और जैनधर्म' जानकारी भरे व उपयोगी हैं। जेसुइट पादरियों का तो कहना भी था कि अकबर जैन धर्मावलम्बी हो गया है। आपके लेख तीर्थंकर पार्श्वनाथ में आपके स्वस्थ स्वतंत्र चिन्तन का आनन्द लिया। भगवान सुपार्श्वनाथ व पार्श्वनाथ इन दोनों ही तीर्थंकरों की मूर्तियों व चित्रों में फणावली अंकन से नाग से संबंध जोड़ना, मेरे विचार में, प्रचलित नाग पूजा का जैन संस्करण है। चलन इसका यों बढ़ा कि नाग को हमारे द्वारा एक भयानक जीव माना जाता रहा है। दरअसल हम लोग सुरलोक, नरलोक के साथ उरग लोग (नाग लोक) की भी धारणा रखते हैं तथा देवेन्द्र, नरेन्द्र के साथ नागेन्द्र को भी जिनेन्द्र देव के चरणों की पूजा में रत बताया गया है। यह सही है कि सांप के कान नहीं होते, पर हम सांप को सैनी पंचेन्द्रिय मानते हैं। लक्कड़ पर फरसे के प्रहार से दो-दो टुकड़े हुए सांप युगल में कोई जीवन शेष रह पाना भी

संभव नहीं और न वे संबोधन, जाप या मंत्र को ही समझ सकते थे। पर मिथक व मिरेकिल जन मानस पर प्रभाव डालने के लिए प्रचारित किए जाते हैं तथा विश्व का कोई धर्म साहित्य इनसे अछूता नहीं है।

बौद्ध ग्रंथों में 'निगण्ठ णाय पुत्त' उनका नाम लिए बिना भगवान महावीर के लिए प्रयुक्त हुआ है। परन्तु इसका नाथ सम्प्रदाय से मुझे इतना ही संबंध लगता है कि उनके अनुकरण में हमने भी तीर्थंकरों के साथ नाथ शब्द जोड़ना शुरू कर दिया लगता है। जहां तक मेरा अंदाज है, महावीर या उनसे पहिले नाथ सम्प्रदाय का वजूद ही नहीं था। पार्श्वनाथ को उग्रवंशी होना बताया गया है और पिता को काश्यप गोत्री। क्या इसका अर्थ यह लें कि उग्रवंश में ही काश्यगोत्री होते थे या कि उग्रवंश का अर्थ प्रतापी वंश लगाया जाए?

– (जस्टिस) एम. एल. जैन, जयपुर

(संपादकीय टिप्पणी इतिहासकारों ने लिच्छवी क्षत्रियों के ८ कुलों का वर्णन किया है जिनमें उग्र वंश को भोगिनाया है। अतः यहां उग्र के किसी अन्य अर्थ की कल्पना करने का प्रश्न नहीं उठता। तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ व पार्श्वनाथ की मूर्तियों में फणावली अंकन-हमारी धारणा है कि नाग जाति अवैदिक आर्यों की एक प्राचीन क्षत्रिय जाति थी जो मुख्यतः श्रमण संस्कृति आधारित थी तथा लिच्छवि क्षत्रियों के उनसे विवाह संबंध भी होते थे। यह हो सकता है कि भगवान पार्श्वनाथ व सुपार्श्वनाथ की माताएं नाग जातिकी राजकुमारियां रही हों। अग्रवाल जाति के मूल पुरुष तथा अग्रोहा गणराज्य के संस्थापक महाराज अग्रसेन, जिन्हें सुप्रसिद्ध इतिहासकार एवं पुरातत्ववेत्ता अजैन विद्वान डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने वैशालिक-वैशाली से आये लिच्छवि क्षत्रिय माना है, का विवाह एक नागवंश की राजकुमारी पद्मावती से हुआ बताया जाता है।

काश्यप गोत्र उग्रवंश का ही एक गोत्र था या लिच्छवियों के अन्य वंशों में भी यह गोत्र होता था, इसकी कोई पक्की जानकारी नहीं प्राप्त होती है। वैसे आचार्य गुणभद्र ने भगवान महावीर को भी काश्यप गोत्री बताया है पर उनके वंश का नामोल्लेख नहीं किया है। किसी-किसी परवर्ती पुराणकार ने उन्हें इक्ष्वाकुवंशी भी लिखा है। - अजित प्रसाद जैन)

शोधादर्श-५० में कुछ पाठकों द्वारा मेरे लेख 'अमृत पेय' में चाय के कतिपय योगों में शहद के उपयोग पर आपत्ति उठाए जाने पर आपके द्वारा प्रस्तुत समाधान

अंधविश्वासियों को संभवतः संतुष्ट न कर पायें। गाय-भैस भोजन करती हैं, वह भोजन शरीर में कहीं-कहीं होकर गुजरता है। उसी में से दूध बनता है और विष्ठा भी बनती है। वह दूध शाकाहारी समझकर हम लोग उपयोग में लाते हैं। वैद्य लोग गाय का गोबर कपड़े में लेकर निचोड़कर, वह पानी जरा जरा हैजे, चेचक में रोगी को देते हैं। बाजार में हर्र बटी चूर्ण मिलता है, गोलियों की शकल में। वह हर्र गोमूत्र में भिगोई जाती है, फिर उसे सुखाकर और कुछ मिलाकर वह गोलियां बनती हैं। हम लोग कब तक इस प्रकार के बंधनों में बंधे रहेंगे !

उस समय हमारे आचार्यों ने शहद के प्रयोग का निषेध किया था जब शहद निकालने की प्रक्रिया में मक्खियों के अंडे-बच्चे भी मसले जाते थे। अब तो फार्मों में शहद इकट्ठा होता है। श्रीनगर (कश्मीर) में मैंने देखा था पेटियां रखी हैं, मक्खियां पेटी में बने छेद में भीतर जाती हैं और फिर बाहर आती हैं, उड़ जाती हैं, फिर आती है। शुद्ध पारदर्शी/फूलों से Extract कर मक्खी वह रस लाती है और यहाँ इकट्ठा करती है। पेटी का ढक्कन खोलें तो भीतर प्लास्टिक का जाल फिट होता है जिस पर मक्खी बैठकर शहद छोड़ती है। नीचे ट्रे रखी होती है। वह जाल हटाकर उसमें से चम्मच से शहद शीशी में भरकर मुझे दिया था।

मैं यह बिल्कुल नहीं कहूंगा कि जो लोग शहद न लेना चाहें वे भी अवश्य लें। लेकिन जो लोग लेते हैं वे मेरे बताएं तरीकों से भी चाय में लेकर देखें।

– साहू शैलेन्द्र कुमार जैन, खुर्जा

यह ज्ञातकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि आपको अहिंसा इंटरनेशनल द्वारा जैन पत्रकारिता के क्षेत्र में उत्कृष्ट सेवाओं हेतु वर्ष २००२ पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। इस अवसर पर हमारी हार्दिक शुभकामनाये स्वीकार करें। आपने जो निश्छल-समर्पित सेवाएं पत्रकारिता के क्षेत्र में की हैं, उसके लिये तो बहुत पहले ही आपको सम्मानित किया जाना चाहिये था। **शोधादर्श** जैसी निष्पक्ष, सारगर्भित बहुमुखी आयामी कोई पत्रिका कहां, जैन-जैनेतर समाज में? वस्तुतः सम्मान के मापदण्ड पक्षपात भरे हैं। फिर भी देर आये, दुरुस्त आये। अच्छा हुआ। हमारा नमन स्वीकार करें।

– डॉ० राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

शोधादर्श जैन जगत में होने वाले विविध कार्य-कलापों की जानकारी का मेरे लिए बरेली में यह एक सर्वोत्तम प्रामाणिक स्रोत है। पत्रिका में छपे लेखों का अपना वैशिष्ट्य है। अधिसंख्य लेख कुरीतियों को उजागर करते हुए मनन करने को विवश

करते हैं। संपादन सुन्दर और श्रेष्ठ है। गवेषणात्मक एवं ज्ञानप्रदायी सामग्री प्रस्तुत करने के लिए शोधादर्श-सम्पादक महानुभाव को बधाई।

- डॉ. रञ्जन कुमार, रूहेलखण्ड वि.वि., बरेली

कल शोधादर्श-५० प्राप्त हुआ। चिन्तन-कण में धर्म-अधर्म विषयक लेख को आपने किन Short and Sweet सौन्दर्य-कलापूर्ण शब्दों में rewrite करके प्रकाशित किया है, इसकी प्रतिभा को शेष पाठक कैसे जान सकते हैं ? ऐसी ही प्रतिभा का प्रयोग पिछले अंक में 'अमृत-मंथन' को short and sweet रूप प्रदान करने में किया था। **- सुखमालचंद जैन, नई दिल्ली**

शोधादर्श-५० को आद्योपांत पढ़ा। सभी लेख विचारोत्तेजक एवं ग्राह्य हैं। 'तथाकथित मल्लिकुमारी मूर्ति' लेख में लेखक ने भ्रमनिवारण की सफल चेष्टा की है। सम्पादकीय में तीर्थंकर पार्श्वनाथ पर मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया गया है, जो सराहनीय है। 'शुचिता-सौम्यता-भव्यता' लेख आकर्षक है। हस्तिनापुर क्षेत्र की यात्रा में हस्तिनापुर का साक्षात दर्शन समाविष्ट है।

- डॉ. रामजीराय, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

शोधादर्श-५० में तीर्थंकर पार्श्वनाथ पर आपका सम्पादकीय शोधपरक तथा विचारणीय है। श्री पद्मकीर्ति जी ने भ. पार्श्वनाथ का दीक्षा स्थल किस परम्परा अथवा आधार पर लिखा है, यह शोध का विषय है। केवलज्ञान स्थल का प्रश्न भी इससे जुड़ा हुआ है। भ. पार्श्वनाथ पर सर्प फणावली वस्तुतः परम्परा की बात लगती है जो किसी समय उपसर्ग घटना के प्रभाव से प्रारम्भ हुयी तथा बाद में स्थायी हो गयी जैसा कि हम भ. बाहुबली की मूर्तियों में भी सर्प, बेल आदि के अंकन के रूप में पाते हैं। तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ की सर्प फणावली का कोई आधार तो ज्ञात नहीं होता, परन्तु दोनों तीर्थंकरों की फणावलियों में सर्प संख्याओं में अन्तर दृष्टव्य है, जिसका कोई आधार होना चाहिये। भ. पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म की व्याख्या उचित है तथा इसे प्रचारित करने की आवश्यकता है।

भगवान महावीर के लिये 'निगण्ठ णाय पुत्त' बौद्धसाहित्य में अधिक पाया गया है। ऐसा लगता है यह नाम उन्हीं का दिया हुआ है। जहां तक **नाथ** शब्द का प्रश्न है, यह प्राचीन आगमग्रन्थों में तीर्थंकरों के साथ संयुक्त नहीं था; यह उनके नाम के साथ कभी बाद में ही जुड़ा है।

डॉ. शशिकान्त जी का लेख 'शुचिता-सौम्यता-भव्यता' बहुत सुन्दर है। परन्तु तन की शुचिता-सौम्यता से भव्यता का निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है। आज के युग में कितने ही लोग तन की शुचिता-सौम्यता के साथ जनमानस को दिग्भ्रमित कर रहे हैं।

-आदित्य जैन, कानपुर

शोधादर्श-५० में सम्पादकीय 'तीर्थंकर पार्श्वनाथ कुछ मौलिक चिन्तन' सराहनीय है। आज इसी प्रकार मौलिक चिन्तन की आवश्यकता है। पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ के मस्तक पर जो फणावलियां अंकित हैं उस सन्दर्भ में आपने ठीक ही लिखा है। इसमें 'भ. पार्श्वनाथ द्वारा उपदिष्ट धर्म का स्वरूप' (पृ.-१४, पंक्ति २७ से आगे) विषयक चर्चा में चातुर्याम और पंचयाम का समाधान किया गया है। मेरा इस संदर्भ में कथन है कि यहां पंचयाम से तात्पर्य 'पंचाचार' मे है क्योंकि भ. महावीर ने छेदोपस्थापना चारित्र का समावेश किया था। **मूलाचार** और **तत्वार्थवार्तिक** इस संदर्भ में दृष्टव्य हैं। **षट्खंडागम** में भी पंचजम का प्रयोग इसी अर्थ में आया है। (**मूलाचार** ७-३६-३८, १२६-१३३। **तत्वार्थवार्तिक** १-७। **षट्खंडागम**, खण्ड-१, भाग १ पृ. ३७३)।

- डॉ. सुदर्शनलाल जैन, वाराणसी

शोधादर्श-५० में स्व. बा. ज्योति प्रसाद जैन देवबंदी का लेख 'भगवान महावीर और महात्मा गांधी,' रमाकान्त जैन का लेख 'अकबर और जैन धर्म,' डॉ. शशिकांत का लेख 'शुचिता-सौम्यता-भव्यता' पठनीय हैं। जिन शोधार्थियों को जैन विद्या पर पी-एच.डी. की उपाधियां मिली हैं, उन्हें मेरा साधुवाद!

- डॉ० परमानन्द जड़िया, लखनऊ

शोधादर्श मैं नियमित रूप से पढ़ रहा हूं। सम्पादकीय सहित सभी लेख ज्ञानवर्द्धक हैं।

- सनतकुमार जैन, रायपुर

शोधादर्श-अंक ५० प्राप्त हुआ। इसके पूर्व कई पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ता रहा हूं, लेकिन शोधखोजपरक जिस प्रकार की सामग्री **शोधादर्श** में पढ़ने को मिली, वैसी इसके पूर्व कहीं न पा सका।

- संजय शास्त्री, अलीगढ़

प्राप्त हुआ मुझको सुखद शोधादर्श पचास
पढ़ा आदि से अंत तक भर मन में उल्लास।
गुरुगुण-कीर्तन में नये गुरु चैन सुखदास

उत्प्रेरक व्यक्तित्व ने पाया नया प्रकाश।
तीर्थंकर श्री पार्श्वपर लेकर खोज विशेष
शोधपरक बहुमूल्य है 'ए.पी. जैन' का लेख।
लेख और सूचनाएं सभी उपयोगी मतिमान
उनके शब्द प्रत्येक में भरा हुआ है ज्ञान।

- महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त', लखनऊ

(हमें खेद है कि हम स्थानाभाव के कारण बंधुवर महावीर प्रसाद जी की प्रशंसा पूर्ण सम्पूर्ण पद्यात्मक प्रतिक्रिया प्रकाशित नहीं कर पाए - प्र. सम्पादक)

नव अंक 'शोधादर्श' का शुचि ज्ञान का भण्डार है।
पाकर जिसे उर में बढ़ा अति हर्ष-पारावार है।।
'शशिकांत' जी का लेख 'शुचिता सौम्यता में भव्यता'।
है मिल रही जिसमें विषय अनुरूप सुन्दर नव्यता।।
है 'श्रेष्ठ श्रावक दिव्यता की देह' कविता अति भली।
परिदृश्य सामाजिक लिये क्षणिका खिंलाती है कली।
है 'हस्तिनापुर क्षेत्र की यात्रा' रही रोचक बड़ी।
कहते 'दयानंद' ज्ञान की है सर्व लेखों में लड़ी।

-दयानंद जड़िया 'अबोध', लखनऊ

शोधादर्श का अंक ५० भी अन्य अंकों की भांति नयापन लिये हुये है। डॉ. ज्योतिप्रसाद जी का 'तथाकथित मल्लिकुमारी मूर्ति' लेख खूब भाया। अच्छा शोध किया गया है। तीर्थंकर पार्श्वनाथ पर आपने आगमोक्त सम्पादकीय लिखकर अच्छा मार्गदर्शन दिया है। सम्पादकीय में आपने बहुत मेहनत की है, ऐसा सम्पादकीय सामग्री पढ़कर स्पष्ट दिखा। एतदर्थ धन्यवाद, बधाई!

एक जब्तशुदा लेख- स्व. ज्योतिप्रसाद (देवबन्दी) का बहुत बार पढ़ गया। समाचार विमर्श अपनी दिव्यता लिये हुये है। अहिंसा इन्टरनेशनल सम्मान प्राप्त होने पर ढेर सारी शुभकामनायें स्वीकारें।

शोधादर्श की निर्भीक पत्रकारिता के प्रति आपकी जागरुकता निश्चित ही स्वागत योग्य है।

- पं. सुनील जैन संचय शास्त्री, जैन दर्शनाचार्य
नरवां (सागर) म.प्र.

शोधादर्श-५० के आपके सम्पादकीय में पारसनाथ भगवान को उग्रवंश में उत्पन्न सिद्ध किया है। अग्रवाल जाति उग्रवंश की है। इस विषय पर आपकी शोध महत्वपूर्ण नवीन है। आपने पुराणों के आधार पर सिद्ध किया है।

सभी लेख खुद में नवीन हैं, पठनीय हैं। **पार्श्व-ज्योति** के सम्पादक डरपोक लगते हैं या फिर शिथिलाचार समर्थक प्रतीत होते हैं। जो स्पष्ट सही-सही जानकारी से समाज को सजग करता रहे, उसी से समाज जागृत रहता है।

- हुकमचंद जैन, मेरठ

'शोधादर्श' शोध-अनुसन्धान कार्य को उजागर करने वाली पत्रिका है। इसमें नई शोध कृतियों की जानकारी तथा शोध-आलेखों का सार प्रकाशित किया जाता है। तथ्यों को निर्भीकता से यथारूप प्रस्तुत करना इसकी विशिष्टता है।

- डॉ. रत्नलाल जैन, हाँसी

शोधादर्श में वैविध्यपूर्ण सामग्री नियमित रूप से प्रस्तुत की जा रही है जो शोध छात्रों, विचारकों एवं जिज्ञासुओं सभी के लिये उपयोगी है। अंक ४६ में साहित्य सत्कार के अन्तर्गत नवप्रकाशित विभिन्न ग्रन्थों का समीक्षात्मक आकलन जैन प्राच्य विद्या के शोधकर्ताओं के लिये लाभप्रद सिद्ध होगा।

अंक ५० में ज्योतिप्रसाद जैन के एक लेख 'तथाकथित मल्लिकुमारी मूर्ति' का पुनर्प्रकाशन मेरे लिये अत्यन्त ज्ञानवर्द्धक रहा क्योंकि मैंने यह लेख पहले पढ़ा नहीं था और उक्त मूर्ति को उसी तथाकथित रूप में वर्षों से देखता आया हूं। जैन मूर्तियों के अध्ययन एवं अनुशीलन में यह संदर्भ मुझे स्मरण रहेगा। इसी अंक में प्रकाशित श्री रमाकान्त जैन का लेख 'अकबर और जैन धर्म' अत्यंत रोचक है। साम्प्रदायिक सौहार्द और अकबर के सुलह कुल का यह आयाम बहुत कम लोग ही जानते होंगे। शोधपरक जानकारियों से भरपूर यह लेख मुझे बहुत अच्छा लगा।

- डॉ. एस. डी. त्रिवेदी

पूर्व निदेशक- राज्य संग्रहालय, लखनऊ

शोधादर्श ५० का सम्पादकीय शोधपूर्ण है। बा. ज्योति प्रसाद (देवबन्दी) का 'भ. महावीर और म. गांधी' तथा श्री रमाकान्त का ' अकबर और जैन धर्म' लेख ज्ञानवर्द्धक हैं। ' महावीर युग में वैशाली' लेख संक्षिप्त होते हुये भी अच्छा है। 'चिन्तन कण' की सामग्री मननीय है। श्री दयानन्द जड़िया की हाइकु और श्री रमाकान्त जेन की क्षणिकायें आकर्षक हैं। समग्रता अंक पठनीय सामग्री संजोये है।

- मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर

आवश्यक सूचना

इस वर्ष का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। चेक लखनऊ के ही स्वीकार होंगे। एक प्रति का मूल्य २० रु. (बीस रुपये) है।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिएं। यथासंभव लेख ३-४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों /न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

- प्रधान सम्पादक

❑ ❑ ❑